रामचरित मानस

(सुन्दर काण्ड)

सम्पादक—

पं० रामकृष्ण शुक्ल एम० ए०

हिन्दी अध्यापक, महाराजा कालेज, जयपूर

प्रकाशक—

साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

प्रथम वार १०००] १९३२ [मूल्य ॥)

प्रकाशक:—
साहित्य-भवन लिमिटेड,
प्रयाग।

मुद्रक:—
शारदाप्रसाद खरे,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

प्रकाशक का वक्तव्य

सुन्दरकाण्ड का यह संस्करण राजपूताना बोर्ड के हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है। इसमें उन सब बातों पर ध्यान रखने की चेष्टा की गई है जिनका जानना परीक्षार्थियों के लिए आवश्यक है। प्रायः बहुत सी बातें विद्यार्थियों को क्लास के भीतर नहीं बताई जातीं और उनका जानना आवश्यक होते हुए भी विद्यार्थी अन्त तक उनसे अनभिज्ञ रहते हैं। अतः इस संस्करण के तैयार करने में सब से बड़ा उद्देश्य यह था कि विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से, बिना किसी की सहायता के भी सुन्दर-काण्ड का अच्छा अध्ययन कर सकें। इस उद्देश्य में भी विशेष ध्यान कमजोर विद्यार्थियों तथा प्राइवेट परीक्षार्थियों का था क्योंकि अध्ययन-सामग्री ठीक न हो सकने पर सब से अधिक हानि इन्हीं की होती है। इस दृष्टि से इस संस्करण में जिन जिन बातों का समावेश किया गया है वे संक्षेपतः ये हैं—

(१) मूल दोहे तथा चौपाइयाँ।

(२) अलग अलग दोहों तथा चौपाइयों के नीचे उनके शब्दार्थ।

(३) " " " उनकी खूब विशद व्याख्या।

(४) " " " शब्दों के समास।

(५) अलग अलग दोहों तथा चौपाइयों के नीचे तद्भव शब्दों के मूल संस्कृत रूप।

(६) अन्तर्कथाएँ।

(७) कठिन या पारिभाषिक विषयों पर नोट।

(८) आवश्यक सामग्री से परिपूर्ण सुन्दर भूमिका जिसमें (१) तुलसीदास जी का जीवन चरित्र और (२) तुलसीदास जी के रामचरितमानस तथा सुन्दरकाण्ड की सरल और संक्षिप्त आलोचना दी गई है।

हमको पूर्ण विश्वास है कि इस संस्करण के अनुसार अध्ययन करके कमजोर से कमजोर विद्यार्थी भी सुन्दरकाण्ड में अनुत्तीर्ण नहीं हो सकता तथा अच्छे विद्यार्थी अपनी और अधिक योग्यता बढ़ा सकते हैं। इसकी गारण्टी के लिए सुयोग्य और सुविद्वान् सम्पादक का परिचय ही काफ़ी है।

इस संस्करण में मूल पाठ काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित रामचरित मानस से लेकर दिया गया है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का पाठ ही आजकल की प्रचलित रामायणों में सबसे अधिक शुद्ध तथा विश्वास योग्य माना जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी और उनका काव्य ।

गोस्वामी तुलसीदास जी सम्राट अकबर और जहाँगीर के समय में हुए थे। इनके माता-पिता, जन्म आदि के सम्बंध में कई प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं। परन्तु बाबा वेणीमाधवदास-

जन्म तथा बाल्यकाल

लिखित 'गोसाईं-चरित' में तुलसीदास जी का जो वृत्तान्त दिया गया है वह अधिक प्रामाणिक माना जाता है और उसी पर अधिक लोगों का विश्वास है। 'गोसाईं-चरित' के अनुसार तुलसीदास जी का जन्म संवत् १५५४ में श्रावण, शुक्ल पक्ष, सप्तमी को हुआ था।

बाँदा ज़िले के राजापुर नामक स्थान में गोस्वामी जी का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी बताया जाता है। तुलसीदास जी पाराशर गोत्र के सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके सम्बन्ध में कहावत भी प्रसिद्ध है—'तुलसी परासर गोत दुबे पतिऔजा के।'

बाबा वेणीमाधवदास ने लिखा है कि तुलसीदास जी बारह महीने गर्भ में रहने के बाद पैदा हुए। जन्म के समय वह पाँच वर्ष के बालक के समान मालूम होते थे, उनके दाँत निकले हुए थे और उनके मुख से स्पष्ट 'राम' शब्द निकला था। इससे उनका नाम 'राम बोला' पड़ गया था।

तुलसीदास जी के पिता को जब मालूम हुआ कि ऐसा असाधारण बालक उत्पन्न हुआ है तो वह बहुत घबड़ाए। उन्होंने ज्योतिषियों, पंडितों आदि से सलाह की और बाद में यह निश्चय किया कि तीन

दिन तक प्रतीक्षा करके देखा जाय और यदि बालक तीन दिन तक जीता रहे तो उसके जन्मसंस्कार आदि किए जाएँ। परन्तु इसी बीच में उनकी माता को बड़ी घबराहट हुई और बच्चे के अनिष्ट की आशंका से उन्होंने अपनी दासी मुनियाँ को बुला कर उसे बालक को पालने-पोसने के लिए सौंप दिया। मुनियाँ ने अपनी ससुराल ले जाकर बालक का पालन किया। परन्तु दुर्भाग्य से लगभग साढ़े-पाँच वर्ष बाद मुनियाँ मर गई और बालक को कुछ समय तक जैसे-तैसे बड़े कष्ट से अपना पेट

शिक्षा

पालना पड़ा। अंत में, संवत् १५६१ में, नरहरिदास जी उसे अपने साथ ले गए और उसे शिक्षा देते रहे। यह नरहरिदास जी ही तुलसीदास जी के गुरु कहे जाते हैं। रामचरितमानस के बालकाण्ड के आरम्भ में जो दोहा है उसमें "वंदौं गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नर-रूप हरि" से भी अनुमान किया जाता है

गुरु के साथ काशी आने पर, वहाँ महात्मा शेषसनातन जी ने इन्हें देखा और वह इनकी तीक्ष्ण बुद्धि को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ उन्होंने इन्हें पन्द्रह वर्ष तक वेद, पुराण, दर्शन, काव्य आदि का अध्ययन कराया। तदुपरान्त तुलसीदास जी राजापुर लौट आए। वहाँ इनके मकान की बड़ी दुर्दशा हो रही थी और उनके वंश का कोई मनुष्य नहीं रह गया था। तुलसीदास जी मकान को ठीक कराकर वहीं रहने लगे।

उसी समय यमुनापार के एक ब्राह्मण परिवार सहित राजापुर में आए और तुलसीदास के गुणों पर रीझ कर उन्होंने अपनी कन्या का

विवाह

विवाह उनके साथ कर दिया। तुलसीदास जी की स्त्री परम रूपवती थी और वह उस पर इतने आसक्त हुए कि उससे अलग रहना इन्हें थोड़े समय को भी न भाता था। एक दिन वह अपने पति से कहे बिना ही

अपने पिता के घर चली गईं। तुलसीदास जी उसके वियोग में व्याकुल होकर ससुराल पहुँचे। यह देख कर स्त्री बड़ी लज्जित हुई और बोली, "जितना स्नेह तुम्हें मेरे इस हाड़-माँस के शरीर से है उतना स्नेह यदि ईश्वर से होता तो संसार के कष्टों से छुटकारा मिल जाता।" उसके कहे हुए ये दोहे प्रसिद्ध हैं—

वैराग्य

लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चरम-मय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।
तैसी जौं श्रीराम महँ, होत न तौ भवभीति"

स्त्री की यह बात तुलसीदास जी के हृदय में चुभ गई और उन्हें उसी समय में वैराग्य हो गया। स्त्री के बहुत कुछ मनाने पर भी वह न रुके और काशी चले गए। इसके बाद वह बराबर भगवद्भजन में लीन रहे।

तुलसीदास जी को रामचन्द्र जी का दर्शन होने के सम्बन्ध में एक अद्भुत कथा प्रसिद्ध है। वह अपने शौचादि कर्म से बचे हुए जल को एक पीपल की जड़ में फेंक दिया करते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत रहता था। एक दिन वह इनके सामने आ गया और इनसे बोला, "तुमने जल देकर मेरा बड़ा उपकार किया है। कुछ माँगो।" तुलसीदास जी ने उससे रामचन्द्र जी के दर्शन माँगे। प्रेत ने कहा, "यदि मुझ में ऐसी ही सामर्थ्य होती तो मैं प्रेत ही क्यों बनता! परन्तु एक उपाय बतलाता हूँ। अमुक स्थान पर रामकथा होती है। वहाँ हनुमान् जी बूढ़े ब्राह्मण का, कोई कोई लोग कहते हैं कि कुत्ते का, वेश धारण करके आते हैं। उनके द्वारा तुम्हे रामचन्द्र जी का दर्शन हो जायगा।" तुलसीदास जी कथा में जाने लगे

राम-दर्शन

और एक रोज़ हनुमान जी को पहचान कर उन्होंने उनके द्वारा रामचन्द्र जी के दर्शन किए।

अन्यचमत्कार

गोस्वामी जी के सम्बन्ध में और भी कई एक चमत्कार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बार किसी स्त्री का पति मर गया था और श्मशान को लेजाया जा रहा था। तुलसीदास जी ने उसे रामनाम के प्रभाव से जिला दिया। जब यह समाचार बादशाह के कानों में पड़ा तो उसने तुलसीदास जी को बुलाकर कोई चमत्कार दिखाने की प्रार्थना की। गोसाईं जी ने कहा कि मैं कोई चमत्कार नहीं जानता, केवल रामनाम जानता हूं। इस पर बादशाह ने उन्हें क़ैद कर लिया और कहा कि जब तक कोई चमत्कार नहीं दिखाओगे तब तक क़ैद से नहीं छोड़े जाओगे। क़ैद हो जाने पर तुलसीदास जी ने रक्षा के लिए हनुमान् जी की स्तुति की। फलतः असंख्य बन्दरों ने आकर बादशाह के कोट पर धावा बोल दिया और कोट को तहस-नहस करने लगे। तब बादशाह ने आकर तुलसीदास जी के पैर पकड़े। तुलसीदास जी ने फिर हनुमान् जी की प्रार्थना की जिससे वह संकट दूर हुआ।

यह भी कहा जाता है कि एक बार कई चोर तुलसीदास जी के स्थान पर चोरी करने के लिए गए। परन्तु वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि श्याम कान्ति का एक सुन्दर बालक वहाँ पहरा दे रहा है। दूसरे दिन जब पुनः वे चोरी करने केलिए पहुँचे तब भी यही दृश्य दिखाई दिया। अन्ततः उन्होंने तुलसीदास जी से पूछा कि आप के यहाँ कौन पहरा दिया करता है। तुलसीदास जी ने किसी पहरेदार को नहीं बिठाया था, अतः ध्यान करके जब उन्हें पता लगा कि स्वयं भगवान् रामचन्द्र जी ही इस प्रकार रूप धारण करके उनकी रक्षा करते थे तो उन्होंने अपने पास की तमाम वस्तुएँ बाँट दीं जिससे दुबारा कोई

उनके यहाँ चोरी करने न आए और न भगवान्‌को ही कष्ट उठाना पड़े।

भ्रमण

गोसाईं जी ने अयोध्या, शूकरखेत, नीमसार, (नैमिषारण्य) आदि अनेक तीर्थों तथा अन्य स्थानों में भ्रमण एवं वास किया था। अयोध्या में रहकर उन्होंने अपने सब से प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस की रचना की थी जिसे उन्होंने दो वर्ष और सात महीने में पूरा किया। परन्तु

अवसान

उनका अधिक निवास काशी में रहा जहाँ संवत् १६८० में श्रावण शुक्ला सप्तमी के रोज़ उन्होंने १२६ या १२७ वर्ष की आयु में अपना शरीर छोड़ा। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोरह सै असी, असीगङ्ग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

तुलसीदास जी काशी में अधिकतर अस्सीघाट पर रहते थे। उसी के पास एक स्थान है जिसे आजकल लङ्का कहते हैं। तुलसीदास की रामायण के अनुसार जो रामलीला उनके जीवन काल में अस्सी पर होती थी उनकी लङ्का इसी आधुनिक लङ्का में बनाई जाती थी। इसी कारण इस स्थान का नाम भी लङ्का पड़ गया। काशी में तुलसीदास जी की आरम्भ की हुई रामलीला आजकल भी अस्सी पर ही होती है और उसमें रावण की लङ्का इसी लङ्का में बनाई जाती है।

तुलसीदास जी के ग्रंथ

तुलसीदास जी के लिखे हुए निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—

१. रामचरितमानस, अर्थात् रामायण,
२. कवित्त रामायण, या कवितावली,
३. विनयपत्रिका,
४. गीतावली,
५. कृष्णगीतावली,

६. दोहावली,
७. सतसई,
८. जानकी-मङ्गल,
९. पार्वती-मङ्गल,
१० रामलला-नहछू
११ बरवै रामायण,
१२ रामाज्ञा-प्रश्न
१३ हनुमान्-बाहुक,
१४. वैराग्यसंदीपनी।

इन सब में सब से अधिक प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ रामचरित-मानस ही है। यह ग्रंथ अवधी भाषा में है। हिन्दी जानने वाला विरला ही कोई हिन्दू होगा जिसने रामायण को न देखा—पढ़ा हो और न कोई ऐसा हिन्दू गृहस्थ ही होगा जिसके यहाँ रामायण की एक दो प्रतियाँ न हों।

रामायण

तुलसीदास जी हिन्दी भाषा के सब से बड़े और पूज्य महाकवि हैं। यह महात्मा 'स्वान्तः सुखाय' लिखते थे, भगवद्भक्ति की अन्तःप्रेरणा से जो कुछ भी इन्होंने लिखा है वह किसी की खुशामद करने, अथवा स्वयं धन या यश उपार्जन करने की इच्छा से नहीं। अतः उनका एक एक शब्द उनकी आन्तरिक अनुभूति, उनके स्वाभाविक भावों, का सच्चा उद्गार है। उसमें कहीं बनावट या नकलीपन नहीं है और न किसी प्रकार का कोई और भद्दापन ही है।

कवि के उपयुक्त जो जो गुण हैं वे तुलसीदास जी में हमें काफ़ी मात्रा में देखने को मिलते हैं। इसका कारण यह है कि तुलसीदास जी विद्वान् थे, उनका भ्रमण अच्छा था और जीवन के सुख-दुःख का वह स्वयं अनुभव कर चुके थे। इतनी सामग्री में उनके उपास्य देव का जीवन चरित और मिलकर सहायक हो गया। बाल्यकाल से लेकर

अन्त तक का रामचन्द्र जी का चरित सुख दुःख पूर्ण उन तमाम परिस्थितियों और अवस्थाओं का एक भारी भंडार है जिनका मनुष्यमात्र को भिन्न भिन्न अवसरों पर इस जीवन में सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र जी ईश्वर थे, भक्तों के रक्षक और प्रणतपाल थे। अतएव तुलसीदास जी का काव्य जहाँ, एक ओर, मानवजीवन की कष्टमूल अवस्थाओं और वेदनाओं का हमको ज्ञान कराता है वहीं, दूसरी ओर, वह हमारे लिये कर्तव्यमय जीवन तथा रामनाम के संजीवनमन्त्र द्वारा आशा का भी संचार करता है, दुःख भार से गिरते हुये मनुष्यों को आश्वासन-प्रदान कर जर्जरित होने से बचा लेता है। साधारण जन, जो विशेष पढ़े-लिखे नहीं हैं और न जिन्हे किसी प्रकार का काव्यज्ञान ही है, जब रामायण को पढ़ते हैं और पढ़ते पढ़ते प्रेममग्न होकर विगलित होने लगते हैं तो उसकी इसी आशाप्रद सञ्जीवनी शक्ति के कारण। पढ़ते समय उनको भक्तभयहारी, दीनों के सखा के अभय-हस्त का अपने ऊपर अनुभव सा होने लगता है। यही कारण है कि काव्य होने के साथ साथ रामायण को एक परम पवित्र धर्मग्रन्थ होने का भी महत्व प्राप्त है। संसार के जितने भी धर्मग्रन्थ हैं उनमें से शायद ही किसी को ऐसा अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ हो। लोग कहते हैं कि संसार में सब से अधिक पढ़ने वाले बाइबिल (Bible) या ईसाइयों की इञ्जील के हैं। यह सत्य है, परन्तु इञ्जील में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह पढ़ने वाले को भगवान् के साक्षात्कार का-सा आनन्द दिखाकर उसके हृदय में प्रेम की व्याकुलता उत्पन्न कर सके।

काव्य की दृष्टि से, हिन्दी साहित्य में तो कोई ग्रन्थ रामायण की टक्कर का है नहीं, दूसरे साहित्यों में भी शायद ही हो। रामायण रसों

रामायण में कविता

का ख़ज़ाना है, मानव हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों का उसमें पूर्ण चित्रण है। तुलसीदास जी का यथार्थ जीवन से यथेष्ट सम्बन्ध रह चुकने के कारण, जीवन की भिन्न भिन्न

परिस्थितियों और उन परिस्थितियों से सम्बन्ध रखने वाले हृदय के भिन्न भिन्न भावों का उनको अच्छा ज्ञान था; इसीलिए रामचरितमानस के भीतर चरित्रचित्रण ऊँचा है और दोष रहित है। स्थान स्थान पर जैसे कि किष्किन्धाकाण्ड और आरण्यकाण्ड में, प्रकृति-वर्णन भी अच्छा किया है जिसमें कहीं कहीं उपदेश का भी पुट आगया है। कुछ लोग इस प्रकार के उपदेश पर आक्षेप करते हैं, परन्तु यह उन लोगों की भूल है। आक्षेप करते समय वे यह भूल जाते हैं कि तुलसीदास तुलसीदास ही थे। 'दामिनि दमक रही घन माहीं, खल की प्रीति यथा थिर नाहीं।' इस वाक्य की नीति गर्भ तुलना पर जो आक्षेप किया जाता है उसका कारण आक्षेप करने वालों की स्थूल दृष्टि है। वास्तव में तुलसीदास जी की भक्ति और नीति से मिश्रित कविप्रतिभा ने उनके उपदेश को भी काव्य ही बना दिया है। तुलसीदास जी ने जिस प्रकृति या नेचर nature का वर्णन किया वह वैज्ञानिकों की शुष्क, केवल रूप आकार वाली प्रकृति ही नहीं है; उस प्रकृति में विश्वात्मा का वास है, शेष सृष्टि की भाँति ही उसका भी जीवन है, देखने वाले मनुष्य को उस प्रकृति में भी मानव-जीवन का रूप दिखाई दे सकता है। नहीं तो यह कैसे कहा जा सकता था :—

'हे खग मृग हे मधुकर-श्रेनी, तुम देखी सीता मृगनैनी ?, अथवा
'सुनहु विनय मम विटप असोका, सत्य नाम करु हरु मम सोका'।

रचना-चमत्कार की भी रामायण में कमी नहीं है। तुलसीदास जी के अलंकार-प्रयोग और उनकी वर्णन-शैली में उनकी अपनी विशेषता

रचना-शैली

मौजूद रहती है। अलंकारों के दो उद्देश्य होते हैं-एक तो, भाषा में सौन्दर्य उत्पन्न करना और दूसरे, किसी गहन या कठिन बात को समझाने में सहायक होना। साथ ही, अलंकार का प्रयोग जबर्दस्ती नहीं होना चाहिए, जिस समय स्वाभाविक ढंग से उसका प्रयोग होता है तभी वर्णन में सुन्दरता आती है। तुलसी

दास जी के अलंकार बनावटी नहीं हैं, जबर्दस्ती सोच सोच कर नहीं बिठाए गए हैं, जैसे जैसे महात्मा जी के भावों के सहयोग में उनका उदय हुआ है वैसे ही वैसे स्वाभाविक रूप से वे आते गए हैं। इसी लिए उनके अलंकारों में प्रायः क्लिष्टता नहीं है और कहीं कहीं ये अलंकार भावों के साथ इतने मिल गए हैं कि आसानी से उनका पता भी नहीं चलता। और प्रायः अलंकारों तथा भावों की संकरता उत्पन्न हो जाती है। परन्तु जिन स्थानों पर अलंकारों का प्रयोग विषय को समझाने के लिए हुआ है वहां अवश्य क्लिष्टता उपस्थित हो जाती है, जिसका कारण विशेषतः उस विषय की ही कठिनता है। ऐसे स्थलों पर प्रायः सांग रूपक का प्रयोग हुआ है, जैसा कि बालकाण्ड के प्रारम्भिक वर्णनों तथा उत्तरकाण्ड में ज्ञान और भक्ति की मीमांसा में हम प्रायः पाते हैं। अलंकारों में सब से अधिक प्रयोग तुलसीदास जी ने रूपक और उपमा का किया है—कहीं कहीं रूपक और उपमा आपस में मिल भी गए हैं—तदनन्तर उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि का प्रयोग है।

वर्णन-रीति

वर्णन रीति अवसर के अनुसार कहीं तो परम कवितामयी हो जाती है और कहीं बिलकुल व्यावहारिक और सीधी सादी। कारण यह है कि तुलसीदास जी ऊँचे विद्वान् और कवि भी थे और उन्हें लोक व्यवहार का भी अच्छा अनुभव था। जहां वह प्रभु के गुणों का तथा उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं अथवा जहां वह प्रकृति की शोभा का दर्शन करते-कराते हैं वहां भाषा में कविता स्वाभाविकरूप से फूट पड़ती है और जहां उन्होंने हमारे जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं तथा कार्यों का वर्णन किया है वहां भाषा भी व्यवहारानुकूल सीधी-सादी अथवा चलती-पुर्जी हो गई है। इस प्रकार की भाषा के उदाहरण हमको तुलसीदास जी के कथोपकथनों तथा हास्य स्थलों में विशेष रूप से मिलेंगे। 'कह लंकेश कवन तैं बन्दर। मैं रघुबीर-दूत दसकंधर'। रावण अंगद जी से पूछता है

कि 'बन्दर, तू कौन है' और अंगद जी उत्तर देते हैं "मैं रामचन्द्र जी का दूत हूँ, रावण!" अंगद स्वयं युवराज थे, तेजस्वी स्वभाव के थे और त्रिलोकीनाथ के दूत बनकर गये थे; वह दूत की मर्यादा को रखते हुए, धृष्ट रावण के धृष्टतापूर्ण प्रश्न का इससे अधिक शिष्ट और क्या उत्तर दे सकते थे? साथ ही उत्तर की संक्षिप्तता के द्वारा रावण की धृष्टता का भी उत्तर दे दिया। परन्तु कुछ लोग इसे 'लट्ठमार' जवाब कहकर तुलसीदास जी की कथोपकथन-रीति पर आक्षेप करते हैं अर्थात् अंगद जी को इतना संक्षिप्त और इतना मुँह-फट जवाब नहीं देना चाहिए था। इस प्रकार के आक्षेप पात्र और परिस्थिति को समझे बिना ही कर दिए जाते हैं। जहां परिस्थिति दूसरे ढँग की है वहाँ इस तरह के उत्तर भी नहीं हैं, जैसा कि हम रावण और हनूमान् जी के संवाद में (सुन्दरकाण्ड में) देख सकते हैं। हनुमान् जी ने अशोक-वाटिका उजाड़ दी है, राक्षसों तथा अक्षयकुमार का वध कर दिया है और फलस्वरूप ब्रह्मास्त्र द्वारा वह बांध कर रावण के सामने लाए गए हैं। रामचन्द्र जी के पक्ष की ओर से विरोध दिखाने का यह पहला ही अवसर है और इस पहले अवसर पर शत्रु के ऊपर यह प्रभाव डालने की आवश्यकता है कि रामचन्द्र जी कौन हैं। संभव है इससे लड़ाई रुक जाय और रावण समझाने में आ जाय। साथ ही रामपक्ष के किसी व्यक्ति की रावण से यह पहली ही भेंट भी है। अतः हनुमान् जी अपना परिचय देने के लिए पहले रामचन्द्र जी का पूरा परिचय देते हैं और बाद में समझा कर कहते हैं—'तासो बैर कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै।' तथा एक बार फिर 'सुनु दसकंठ कहहुँ पन रोपी। राम-विमुख-त्राता नहिं कोपी।' अतः 'मोह-मूल बहु शूलप्रद, त्यागहु तुम अभिमान। भजहु राम रघुनायकहिं, कृपासिंधु भगवान।' यहां लम्बा उत्तर देने तथा व्याख्या करने की आवश्यकता थी, अंगद के उत्तर में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी।

इस थोड़े से कथन का सारांश यही है कि, हम किसी भी दृष्टि से देखें, रामचरितमानस संसार के साहित्य में एक अद्भुत महत्त्व का ग्रन्थरत्न है।

तुलसीदास जी तथा रामायण का महत्त्व

उसका महत्त्व जनता के लिए तो है ही, परन्तु तुलसीदास जी के लिए भी उसका महत्त्व कम नहीं है। यदि तुलसीदास ने रामचरितमानस को बना कर अपनी प्रतिभा द्वारा उसे अमरत्व प्रदान किया है तो रामचरितमानस ने भी तुलसीदास जी को अमर बनाया है। यदि तुलसीदास जी ने केवल रामचरितमानस ही लिखा होता, दूसरे ग्रंथ न लिखे होते, तो भी उनका यश और माहात्म्य उतना ही विशाल होता जितना अब है। परन्तु यदि उन्होंने अन्य सब ग्रंथ ही लिखे होते और रामचरितमानस न लिखा होता तो सन्देह किया जा सकता है कि उनकी कीर्ति कदाचित् इतनी व्यापक और इतनी चिरस्थायी न होती। रामचरितमानस के द्वारा तुलसीदास जी हमारे सामने कवि के अतिरिक्त और भी कितने ही रूपों में उपस्थित होते हैं। वह जीवन के प्रत्येक मार्ग में हमारे पथप्रदर्शक हैं। वह गृहस्थ हैं परन्तु विरक्त महात्मा भी हैं, समाज से उनका कोई नाता नहीं तथापि वह सच्चे समाज-सुधारक हैं, मतमतान्तरों आदि के भेद से झगड़ते हुए अथवा कुमार्गगामी मनुष्यों के लिए वह कहीं मृदु और कहीं कठोर न्यायाधीश हैं, मनु आदि ऋषियों की भाँति वर्णाश्रम धर्म के प्रतिष्ठापक तथा लोकमर्यादा के नियामक हैं, वह राजनीतिज्ञ हैं—संक्षेप में, वह हमारे गुरु भी हैं, सखा भी हैं और हैं, सब से बढ़कर, संसार के दुःखजाल के बीच शान्ति का वरदान देने वाले तथा ईश्वर का साक्षात्कार कराने वाले सिद्ध पुरुष। तुलसीदास जी कहीं गए नहीं हैं, वह अब भी हमारे साथ हैं, उनका रामचरितमानस मूर्तिमान् तुलसीदास है, संसार के लोगों को जीवन और आनन्द का सर्वदा सन्देश देते रहने के लिए दोनों अमर हैं।

सुन्दरकाण्ड

रामायण सात काण्डों में विभक्त है जिनके नाम हैं—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकांड, सुन्दरकांड, लंकाकांड और उत्तरकांड। ये सातों कांड सम्पूर्ण राम कथा के विकास में सात अलग २ अवस्थाओं के परिचायक हैं। रामचन्द्रजी के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक जिन सात मुख्य मुख्य भागों में कथा का विकास हुआ है उन्हीं के अनुसार कांडों का भी विभाग किया गया है। यह तो सामान्य उद्देश्य है जो प्रत्येक कथा के विकास में देखने को मिलता है। परन्तु यह बात बराबर ध्यान में रखनी चाहिए कि तुलसीदास जी उपन्यासलेखक की भाँति केवल कथारस के आनन्द से तृप्त करना ही नहीं चाहते थे, लौकिक सुख के साथ २ हमारे पारमार्थिक सुख की ओर भी उनका लक्ष्य था। अतएव सात कांड मनुष्य के पारमार्थिक विकास की भी सात सीढ़ियाँ हैं। बालकांड का नाम उन्होंने संतोष सम्पादन' रक्खा है और उत्तर कांड का नाम 'अविरलहरिभक्ति-सम्पादन' है। इस शृंखला में सुन्दरकांड का स्थान 'विमलज्ञान सम्पादन' का है।

यद्यपि रामचरितमानस में बालकांड, अयोध्याकांड आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। परन्तु उपर्युक्त शृंखला पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि सुन्दरकांड का भी अपना अलग महत्व है। छोटा होने और लौकिक चरित्र तथा लौकिक चर्या की ओर अधिक अग्रसर न होने के कारण सुन्दरकांड सामान्य लोकरुचि की दृष्टि से अयोध्या कांड के बराबर चाहे न हो सके, तथापि यह हम जानते हैं कि प्रायः लोग इसका स्तोत्रग्रंथ की भाँति पाठ किया करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि एक रूप में सुन्दरकांड का महत्व दूसरे कांडों से अधिक है।

सुन्दरकांड का 'विमलज्ञानसम्पादन' नाम मिथ्या नहीं है। इसमें लौकिक चरित्रों और लौकिक कार्यों की विशेष चर्चा नहीं है, उतनी से

अधिक नहीं जितनी कि भगवान् को नररूप में चित्रित करने के लिए स्वाभाविक थी। भगवान् का नरचरित्र भी यहाँ अधिक नहीं है, क्योंकि स्पष्ट नरचरित्रों से उनका इसमें कोई सम्पर्क भी नहीं होता। इसमें न तो वह निषाद से नाव पर चढ़ाने के लिए प्रार्थना करते हैं, न जङ्गलों में रहने के लिए स्थान ढूंढते फिरते हैं, न स्त्री के आग्रह से हिरन मारने को दौड़ जाते हैं और न फिर स्त्री के खोए जाने पर विकल विरही के रूप में विलाप करते फिरते हैं। सुन्दर-काण्ड में जो उनकी सत्ता है वह साँसारिक चंचलता से परे गंभीर शान्त विकार-शून्य स्थिरता की सत्ता है जिसमें परब्रह्म का भान करना कठिन नहीं है। नररूप के लौकिक व्यवहार में भी यहां उसी स्थिरता और मर्यादा के दर्शन होते हैं। लक्ष्मण में चञ्चलता दिखाई देती है, वह कहते हैं समुद्र को सुखा दो, परन्तु सर्वज्ञ भगवान् मुस्करा कर निर्विकार भाव से केवल इतना ही उत्तर देते हैं—धीरज धरो, ऐसा ही होगा।

अखिल देवताओं के विजेता रावण का वध कराने से पहले यह आवश्यक था कि भगवान् के पूर्ण और असली रूप का ज्ञान करा दिया जाए, इसी लिए भगवान में विकार आदि का लेश नहीं है। यही परब्रह्म का रूप है। अतएव हम काण्ड के आरंभ में भी देखते हैं कि मङ्गला-चरण के प्रथम श्लोक में भगवान् का वर्णन 'शान्तं शाश्वतमप्रमेय-मनघं निर्वाणशान्तिप्रदं ब्रह्माशम्भुफणीन्द्र सेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्' कह कर किया गया है, दूसरे काण्डों की भाँति उनके रूप आकार आदि का कथन करके नहीं। दूसरी बात यह है कि इस काण्ड में भगवान स्वयं भी अपने सर्वशक्तिमान् रूप का प्रकाश करते हैं। दूसरे काण्डों में उन्होंने अपने व्यक्तित्व को अपने मुख से इतना अधिक और इतने स्पष्ट रूप में प्रकट नहीं किया है। बीस-पचीस पृष्ठों के इस काण्ड में उन्होने कम से कम ६–७ स्थलों पर इस प्रकार अपने व्यक्तित्व का उल्लेख किया है,—यथा

"सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं, जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं।"
"सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ, जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।"
"बचन काय मन मम गति जाही, सपनेहु बिपति कि चाहिय ताही।"
"जदपि सखा तव इच्छा नाहीं, मोर दरसु अमोघ जग माहीं।"

आदि। दूसरों के द्वारा रामचन्द्र जी की महिमा का वर्णन तो तमाम कांड में ही भरा पड़ा है, जिसके उदाहरण हनुमान रावण का संवाद, रावण-विभीषण का संवाद, राम विभीषण का संवाद, शुक-रावण-संवाद आदि हैं। इस प्रकार विमलज्ञान का मूल आधार सर्वशक्तिमान् का यथार्थ रूप दिखाना सुन्दरकांड का प्रधान पारमार्थिक उद्देश्य है।

परन्तु उद्देश्य इतने में ही समाप्त नहीं होता। उस ईश्वर को प्राप्त करने के लिए भक्ति ही सब से सरल मार्ग है और भक्ति का आधार है सगुण उपासना। भगवान स्वयं कहते हैं—

"सगुन-उपासक परहित, निरत नीति-दृढ़-नेम।
ते नर प्रान-समान मम, जिनके द्विजपद प्रेम॥"

इस उपासना और भक्ति के सर्वश्रेष्ट आदर्श भक्तशिरोमणि हनुमान् जी हैं; यहाँ तक कि राम यदि भवन हैं तो हनुमान् जी द्वार हैं। तुलसीदास जी को भी हनुमान् जी के द्वारा ही रामचन्द्र जी के दर्शन हुए थे। हनुमान जी सुन्दरकाण्ड के मुख्य चरित्र हैं। वह भगवान के परम सेवक और अनन्य कार्य साधक हैं। उनका तेज, बल, वेग अपार है, यदि यह कहा जाए कि वह भगवान् की ही एक शक्ति हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी, परन्तु अपनी भक्ति की असीमता में वह अपने को अकिञ्चन समझते हैं और कहते हैं—

"साखामृग की अति मनुसाई, साखा तें साखा पै जाई।
नाँघि सिंधु हाटकपुर जारा, निसिचरगन बधि बिपिन उजारा।
सो सब तव प्रताप रघुराई, नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई।"

महिमा और विनय के आगारस्वरूप ऐसे देवता का चरित्र किसके हृदय में भक्ति की उद्भावना नहीं करेगा। हनुमान् के सामने इस प्रकार श्रद्धा से झुककर हम हनुमान् के स्वामी के सामने स्वाभाविक रूप से ही झुक जाते हैं और उनके कुछ निकट पहुँच जाते हैं, क्योंकि भगवान् को भक्त प्रिय है और भक्त से भी अधिक भक्त का भक्त।

यही सुन्दरकाण्ड का महत्त्व है और उसकी विशेषता है। ज्ञान सम्पादन का प्रारम्भिक काम यहाँ पर इसी रूप में सिद्ध किया गया है— भगवान् की पूर्ण महिमा दिखाकर और उनके लिए भक्ति की सहज प्रेरणा करके। परन्तु कथाविकास का अङ्ग होने के कारण सुन्दरकाण्ड लौकिक व्यवहार की व्यञ्जना से भी एकान्त शून्य नहीं है यद्यपि लौकिक व्यवहार में दुर्बल मानवी विकारों के दिखाने की यहाँ अधिक गुञ्जाइश नहीं है। भगवान् का रूप यहाँ पर पूर्णशक्तिमान् स्थिर परिचालक का है। पहले हम देख चुके हैं कि रावण को हनुमान् जी का उत्तर कितने उद्देश्य से भरा हुआ है और उसमें राजनीति का क्या तत्व मौजूद है। इसी प्रकार भगवान् का विभीषण से समुद्र पार करने के लिए राय माँगना एक तो अभ्यागत के संस्कार की लोकमर्यादा का उदाहरण है और दूसरी ओर वह राजनीति की एक चाल भी है। विभीषण शत्रु-पक्ष का एक विशेष व्यक्ति है और इस समय वह अपने पक्ष से रूठ कर आया है। उससे शत्रु को जीतने में बहुत सहायता मिल सकती है—शत्रु के बहुत से भेद मालूम हो सकते हैं। अतः उसको खातिर दिखाकर मिलाए रखना आवश्यक है, जिसके फलस्वरूप तत्काल ही उसका राजतिलक हो जाता है। और उसे सलाहकार बना लिया जाता है। भगवान्, यह जानते हुए भी कि अनन्तः अपनी प्रभुता का प्रभाव दिखाए बिना समुद्र पार नहीं किया जा सकेगा, एक ओर तो मर्यादा-पालन के लिए और दूसरी ओर विभीषण का मन रखने के लिए उसकी सलाह के अनुसार कार्य करते हैं।

दूसरे कांडों की भाँति सुन्दरकांड में भी लोकव्यवहार सम्बन्धी अनेक सूक्तियाँ मौजूद हैं। उपर्युक्त प्रसंग के ही दो एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

"भय बिनु होइ न प्रीति।"

"शठ सन विनय कुटिल सन प्रीती, सहज कृपण सन सुन्दर नीती।
ममतारत सन ज्ञान-कहानी, अति लोभी सन विरति बखानी।
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा, ऊसर बीज बये फल जथा।"

"काटे पै कदली फरै, कोटि यतन कर सींच।
विनय न मान खगेश सुनु, डाटेहि ते नवनीच।"

"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।"

काव्य की दृष्टि से देखने पर हमको तुलसीदास जी की कविता के प्रायः सब मुख्य लक्षण सुन्दरकांड में मिलते हैं। अलङ्कारों में उपमा, रूपक आदि के उदाहरण यथेष्ट हैं जिनमें अवसर के अनुकूल नीति का पुट भी मिला होता है, रसाधार भावों के उदाहरण भी हैं जैसे सीता जी का अपनी विरह-दशा का वर्णन, चरित्र-चित्रण में हनुमान् जी और रामचन्द्र जी के उदाहरण दिए जा चुके हैं। चरित्र-चित्रण का उत्कर्ष यही है कि पात्र के वास्तविक स्वभाव और कर्म का यथार्थ परिचय हो जाए। सुन्दरकांड पढ़ कर हनुमान् जी की पूरी असलियत से हम बड़े स्वाभाविक ढङ्ग से परिचित हो जाते हैं, रामचन्द्र जी का भी जो मूल परन्तु यहाँ नया रूप है उसे हम अच्छी तरह जान लेते हैं। थोड़े थोड़े अंश में रावण तथा अन्य गौण पात्रों का भी कुछ परिचय होता है जो आगे लङ्काकांड में अधिक विकसित होता है। चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत भावों की सूक्ष्म अवस्थाओं का भी कहीं कहीं वर्णन है। सीता जी का विरहाकुल होकर अशोक से अङ्गार माँगना और अंगूठी को अंगार के धोखे से उठा लेना, फिर उसे पहचान कर चकित होना तथा हर्ष-विषाद के वशीभूत होकर मन में तरह तरह के तर्क करना, छिपे

हुए हनुमान् जी के मुख से राम-गुण सुनकर उल्लसित होना और हनुमान् जी के प्रकट होने पर विस्मय और संकोच से मुँह फेर कर बैठ जाना सूक्ष्म चित्रण का बड़ा श्रेष्ठ उदाहरण है। इसी प्रकार

"कपिहिं बिलोकि दशानन, बिहँसि कहेसि दुर्बाद।
सुत-बध-सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद।" और बाद में क्रोध के वशीभूत हो रावण का कटुवचन आदि कहना मानसिक अवस्था का बड़ा सच्चा वर्णन है।

काव्य के अंगभूत 'अद्भुत' तत्व को, जिसे अङ्ग्रेज़ी में Romance कहते हैं, सुन्दरकाण्ड में प्रचुरता है। परन्तु प्रकृतिवर्णन इस में नहीं के बराबर है। यह शायद इस लिये कि वाल्मीकि के सुन्दरकाण्ड का पूर्ण आधार लेकर तुलसीदास जी ने अपने सुन्दरकाण्ड को अधिक बड़ा नहीं बनाना चाहा क्योंकि उनका उद्देश्य यहाँ पर अपने प्रभु का असली रूप दिखाना तथा हनुमान जी की महिमा का वर्णन करना ही था।

राम कृष्ण शुक्ल

रामचरित मानस

सुन्दर काण्ड

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ॥

नित्य, शान्त, अपार, पापरहित, मोक्ष तथा शान्ति के देने वाले, ब्रह्मा महादेव जी और शेषनाग से सेवित, वेदान्त द्वारा जानने योग्य, व्यापक, रामनाम वाले संसार के स्वामी, जो देवताओं के भी पूज्य हैं और अपनी माया द्वारा मनुष्य रूप धारण करने वाले साक्षात् भगवान हैं, जो रघुकुल में श्रेष्ठ, करुणा के करने वाले और राजाओं के शिरोभूषण हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥

हे रघुकुल के स्वामी, मेरे हृदय में कोई दूसरी इच्छा नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ—और आपतो सब के अन्तर्यामी हैं—मुझे अपनी केवल पूर्ण भक्ति दीजिए और मेरे मन को काम आदि दोषों से रहित कीजिए। (बस, यही मेरी इच्छा है।)

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥

जो अपार बल के आगार हैं, जिनके शरीर की कान्ति सुवर्ण के पर्वत (सुमेरु) की कान्ति के समान है, जो राक्षसरूपी वन के लिए अग्नि के समान है, ज्ञानियों में जो अग्रणी हैं, तमाम गुणों की जो निधि हैं, उन वानरों के अधीश्वर तथा श्रीरामचन्द्र जी के श्रेष्ठ दूत पवनपुत्र (हनुमान् जी) को मैं प्रणाम करता हूँ ।

जामवन्त के बचन सुहाये । सुनि हनुमन्त हृदय अति भाये ।

श्रीहनुमान् जी तथा अन्य वानरगण समुद्रतट पर बैठकर श्री सीता जी की खोज के लिये तरह तरह के उपाय सोच रहे हैं । उस समय जाम्बवान् ने श्रीहनुमान् जी से कहा कि तुम्हारे समान बल-बुद्धि में कोई नहीं है । तुम्हीं समुद्र लांघकर जाओ और सीता जी का पता लगाकर श्रीरामचन्द्र जी को समाचार दो । फिर श्री रामचन्द्र जी अपने बाहुबल से रावण का वधकर सीता जी को ले आएँगे । उसके बाद का प्रसंग सुन्दर काण्ड में आरम्भ होता है ।

सुहाये—शोभित, अच्छे लगने वाले, मनोहर ।

जाम्बवान् के सुन्दर वचन सुनकर हनुमान जी को हृदय में बड़ा आनन्द हुआ, उन्हें वे वचन बड़े अच्छे मालूम हुए ॥

तब लगि मोहि परिखेहु तुम भाई । सहि दुख कन्द मूल फल खाई ॥
जब लगि आवउँ सीतहि देखी । होइ काज मोहि हरष बिसेखी ॥

परिखेहु—परीक्षा करना, प्रतीक्षा करना, राहदेखना । हरष—हर्ष । बिसेखी—विशेष, अधिक ।

हे भाई, आपलोग मेरी उस समय तक राह देखना और कन्द, मूल तथा फल खाकर समय बिताना जब तक कि मैं सीता जी का पता लगाकर लौट न आऊँ । यदि काम बन गया तो मुझे बड़ा

हर्ष होगा (अथवा मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है, अतः कार्य अवश्य सिद्ध होगा) ।

अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा ।

माथा—मस्तक । हिय—हृदय ।

ऐसा कह कर और सब को मस्तक नवाकर श्रीहनुमान् जी हृदय में रघुकुल के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी का ध्यान रखते हुए चले।

सिन्धु तीर एक भूधर सुन्दर । कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ।
बार बार रघुबीर सँभारी । तरकेउ पवनतनय बलभारी ॥

सिन्धु—समुद्र । भूधर—पृथ्वी को धारण करने वाला अर्थात पर्वत । कौतुक—खेल से, आसानी से । सँभारी—याद करके । तरकेउ—गर्जना की । बलभारी—भारीबलवाले, (बहुव्रीहि समास) या, बल भारी—भारी बल से, बड़े वेग से ।

समुद्र के किनारे पर एक सुन्दर पर्वत था । हनुमान् जी बड़ी सरलता से कूद कर उसपर चढ़ गए । बार बार रामचन्द्र जी का स्मरण कर पवन के पुत्र परम बलशाली हनुमान् जी ने गर्जना की ।

जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता । चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता ।
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । तेही भांति चला हनुमाना ॥

जेहि—जिस । गिरि—पर्वत, यहाँ पर्वत की चोटी : जिमि—जैसे । अमोघ—अचूक । कर—का, के । बाना—बाण ।

जिस जिस पर्वत-शिखर पर हनुमान् जी चरण रखते थे, वही (उनके भार से) तुरन्त पाताल को धँस जाता था । जिस प्रकार रामचन्द्र जी के बाण अचूक हैं उसी प्रकार हनुमान् जी भी (बिना किसी रोक टोक या बाधा के) चले ।

अलङ्कार—उपमा ।

जलनिधि रघु-पति-दूत विचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी।

जलनिधि—जल की निधि या खजाना, (तत्पुरुष समास) समुद्र। श्रमहारी—श्रम, अर्थात् थकान का हरने वाला (तत्पु०) तैं—तू, कहीं कहीं इसके स्थान में 'कह' पाठ है।

समुद्र ने हनुमान् जी को रामचन्द्र जी का दूत समझ कर (मैनाक पर्वत से कहा कि) "हे मैनाक, तू हनुमान जी की थकान को दूर कर।"

हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
रामकाज कीन्हे बिना, मोहि कहाँ बिस्राम॥

तेहि—उसको। परसा—स्पर्श किया, छूआ। कर—हाथ। पुनि—पुनः, फिर। रामकाज—रामकार्य (तत्पु०) मोहि—मुझको। बिस्राम—विश्राम।

(समुद्र के कहने से मैनाक ऊपर को उठगया जिससे हनुमान् जी उसपर बैठकर थोड़ीदेर आराम कर सकें। तब हनुमान जी ने) उसे अपने हाथ से छूआ और फिर उसे प्रणाम किया। (तदनन्तर उन्होंने कहा कि) "रामचन्द्र जी का काम जब तक पूरा न कर लूँ तब तक मुझे आराम करने का कहां अवसर है ?"

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानइ कहुँ बल-बुद्धि-बिसेखा।
सुरसा नाम अहिन कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता।

बिसेखा—विशेष, अधिक (ता)। जानइ कहुँ—जानने के लिए। अहिन कै—सर्पों की। पठइन्हि—प्रस्थापिता, भेजा। बाता—वार्ता।

देवताओं ने वायुपुत्र हनुमान् जी को देखा। उन्होंने हनुमान् जी की बल-बुद्धि की विशेषता जानने के लिए सर्पों की माता

को, जिसका नाम सुरसा था, भेजा। उसने (हनुमान् जी के पास पहुँच कर यह) बात कही—

आजु सुरन मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा।

अहारा—आहार, भोजन।

"आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है।" यह बात सुनकर हनुमानजी बोले—

रामकाज करि फिरि मैं आवउँ। सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावउँ।
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।

फिरि आवउँ—लौट आऊँ। सुधि—शोध, खबर, समाचार। तव—तेरा। बदन—वदन, मुख। पैठिहउँ—प्रवेश कर लूंगा, बैठ जाऊँगा।

"रामचन्द्रजी का कार्य करके लौट आऊँ और सीता जी का समाचार अपने स्वामी (रामचन्द्र जी) को दे आऊँ। उसके बाद मैं तेरे मुख में (स्वयंही) आ बैठूंगा। मैं सच कहता हूं, माता, मुझे जाने दे।"

कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना।

कवनेहु—किसी भी। जतन—यत्न, युक्ति। ग्रससि—(ग्रस धातु का वर्तमान में मध्यम पुरुष एक वचन का रूप) निगलना।

(हनुमान् जी की तरह तरह की युक्तियां देने पर भी) किसी भी प्रकार वह उनको नहीं जाने देती (थी)। हनुमान् जी ने कहा "मुझे तू क्यों नहीं खाती ? (अथवा, मुझे मत खा)"।

जोजन भरि तेहि बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन-विस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥

सत जोजन तेहि आनन कीन्हा। अति-लघु-रूप पवनसुत लीन्हा॥
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। माँगा बिदा ताहि सिर नावा॥

जोजन—योजन, चारकोस। पसारा—प्रसार, फैलाया। दुगुन—द्विगुण, दोगुना। बिस्तारा—फैलाया। ठयऊ—स्थित, किया। जस—यथा। दून—द्विगुण। सत—शत, सौ। आनन—मुख। पइठि—प्रविष्ट, प्रवेश करके। पुनि—पुनः। बाहिर—बहिः। ताहि—उसको। नावा—नामित, झुकाया।

उसने (तब) चार कोस तक अपना मुँह फैलाया। वानर (हनुमानजी) ने अपने शरीर को उससे दुगुना (आठ कोस का) फैला लिया। सुरसा ने सोलह योजन अपने मुख का विस्तार किया। हनुमानजी उसी दम बत्तीस योजन के हो गए। जैसे जैसे सुरसा अपना मुख बढ़ाती गई (वैसे ही वैसे) हनुमान जी ने अपना उससे दुगुना रूप बनाकर दिखा दिया। (जब) उसने अपना सौ योजन का मुख किया (तो) हनुमान जी ने बहुत छोटा सा रूप धारण कर लिया और वह उसके मुख में प्रवेश करके फिर बाहर आगए। उन्होंने जाने के लिए उससे आज्ञा माँगी और सिर नवा कर प्रणाम किया।

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि-बल-मरमु तोर मैं पावा॥
राम-काजु सब करिहहु, तुम बल-बुद्धि-निधान।
आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान॥

जेहि लागि—जिस लिए। पठावा—प्रस्थापित, भेजा। बुधि—बुद्धि। मरमु—मर्म, रहस्य, असलियत। तोर—तुम्हारा। पावा—प्राप्त किया। निधान—खजाना। आसिष—आशिष्, आशीर्वाद। हरसि—हर्ष, प्रसन्न होकर।

(सुरसा ने कहा) "मुझे जिस लिए देवताओं ने भेजा था, सो मैंने तुम्हारे बल और बुद्धि की असलियत मालूम कर ली। तुम रामचन्द्र जी के सब कार्यों को पूरा करोगे। तुम बल और बुद्धि का खजाना हो।" यह आशीर्वाद देकर वह गई और हनुमान् जी प्रसन्न होकर (वहाँ से) चले।

निसिचरि एक सिन्धु महँ रहई। करि माया नभके खग गहई॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥

निसिचर—निशाचर, रात में फिरने वाला, राक्षस। माया—जादू। नभ—आकाश। खग—पक्षी। गहई—(ग्रह् धातु से बना) पकड़ लेता था। गगन—आकाश। बिलोकि—देखकर। परिछाहीं—परिच्छाया, प्रतिच्छाया, छाँह, साया। एहि बिधि—इस प्रकार। गगनचर—आकाश में चलने वाले, पक्षी। खाई—खादति, खा लेता था।

समुद्र में एक राक्षस रहता था। वह अपने जादू द्वारा आकाश के पक्षियों को पकड़ लेता था। जो कोई भी जीव जन्तु आकाश में उड़ते थे, जल के ऊपर उनकी परछाईं को देखकर वह उस परछाईं को पकड़ लेता जिससे पक्षी उड़ नहीं पाता था। इस भाँति वह हमेशा आकाश के पक्षियों को खालिया करता था।

सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा॥
ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि-पार गयउ मतिधीरा॥

छल—कपट। चीन्हा—पहचान लिया। मारुतसुत—वायु का पुत्र (तत्पु० समास) हनुमान् जी। बारिधि—वारिध, समुद्र। मति-धीरा—मति में धीर (तत्पु०), धीर बुद्धि वाले।

वही छल उसने हनुमान् जी से किया। हनुमान् जी ने उसकी चालाकी फ़ौरन पहचान ली। वीर हनुमान् जी उसे मार कर धीर मति से समुद्र के पार पहुँचे।

तहां जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु-लोभा ॥
नाना तरु फल फूल सुहाये। खग-मृग-वृन्द देखि मन भाये ॥

सोभा—शोभा। गुँजत—गुँजार करते थे। चंचरीक—भौंरे। मद-लोभा—पुष्परस अर्थात् शहद के लोभ से (तत्पु०)। नाना—बहुत से। तरु—वृक्ष। वृंद—समूह। खग-मृग-वृंद—पक्षियों और मृगों (द्वन्द्व) के समूह (षत्पु०)। भाये—अच्छे मालूम हुए, पसन्द आये।

वहाँ पहुँच कर उन्होंने वन की शोभा को देखा। वहाँ मधु के लालच से भौंरे गुञ्जार कर रहे थे और तरह तरह के वृक्ष, फल, फूल आदि शोभायमान थे। वहाँ पक्षियों और मृगों के झुँड बड़े अच्छे मालूम होते थे।

अलंकार—स्वभावोक्ति

सैल बिसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे ॥
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु-प्रताप जो कालहि खाई ॥

सैल—शैल, पहाड़। बिसाल—विशाल, बड़ा। धाइ—दौड़ कर। भय त्यागे—डर छोड़ कर। उमा—पार्वती। अधिकाई—बड़ाई, विशेषता। प्रभु-प्रताप—प्रभु (रामचन्द्र जी) का प्रताप (तत्पु०)।

(हनुमान् जी) सामने एक बड़ा पर्वत देखकर और भय त्याग कर, दौड़कर, उस पर चढ़ गए। (शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि) "हे उमा, इसमें हनुमान् जी का कोई बड़प्पन

नहीं है। यह सब भगवान् का प्रताप है (अर्थात् यह सब उन्होंने भगवान् के प्रताप से किया) जो मृत्यु तक को खा जाता है।

गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग विसेखी॥
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनककोट कर परम प्रकासा॥

तेहि—उसने। अति—बहुत, बड़ा। दुर्ग—अगम्य, किला। उतंग—उत्तुङ्ग, ऊँचा। पासा—पार्श्व, समीप में। कनककोट—सोने का कोट (नत्सु०) या दुर्ग अथवा चहारदीवारी।

पहाड़ पर चढ़ कर हनुमान जी ने लंका को देखा। वह विशेष रूप से अति अगम्य थी (अथवा उसका किला बहुत बड़ा था) जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कोट बहुत ऊँचा था और उसके आस-पास (अर्थात चारों ओर) समुद्र था। उस सोने के बने हुए कोट का बहुत प्रकाश हो रहा था (अर्थात वह खूब चमक रहा था)।

कनक कोट विचित्र मनिकृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहुविधि बना॥
गजबाजि खच्चर निकर पदचर रथबरूथन्हि को गनइ।
बहुरूप निसिचर-जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनइ॥

मनि—मणि। आयतन—मकान, भवन। चउहट्ट—चतुष्पथ, चौराहा। हट्ट—हाट, बाजार। सुबट्ट—सड़कें। वीथी—वीथि, गली। चारु—सुन्दर। पुर—नगर। बहुविधि—तरह तरह का। गज—हाथी। बाजि—घोड़े। निकर—समूह। पदचर—पैदल। बरूथ—समूह। कोगनइ—कौन गिने। जूथ—यूथ, समूह। सेन—सेना।

सोने का बना हुआ वह कोट तरह तरह की मणियों से जड़ा हुआ था। उसमें सुन्दर सुन्दर भवन थे। अनेक प्रकार से सुन्दरता

से बना हुआ वह नगर सुन्दर चौराहे, बाजार, सड़कों और गलियों से युक्त था। वहाँ के हाथी, घोड़े, खच्चरों तथा पैदल सैनिक व रथों के समूहों की कौन गणना कर सकता है ? और न वहाँ के तरह तरह के रूप आकृति वाले राक्षसों के समुदाय तथा बलशाली सेना का ही वर्णन किया जा सकता है।

वन बाग उपवन वाटिका सर कूप बापी सोहहीं।
नर-नाग-सुर-गन्धर्व-कन्या-रूप मुनि-मन मोहहीं॥
कहुं मल्ल देह बिसाल सैल-समान अतिबल गर्जहीं॥
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं॥

उपवन—बगीचा। वाटिका—बगीचियाँ। सर—तालाब। वापी—बावड़ी। बिसाल—विशाल, बड़ा। अखारेन्ह—अखाड़ों में। तर्जहीं—ललकारते थे, डाटते थे। नरनागसुरगंधर्व (द्वन्द)—कन्या (तत्पु०)—रूप (तत्पुरुष)।

उस नगर में वन, बाग, उपवन, वाटिका, तालाब, कुए और बावड़ियाँ शोभायमान थीं। वहाँ पर मनुष्य, नाग, देवता तथा गंधर्व जाति की कन्याओं के रूप मुनियों के मन को मोहने वाले थे। कहीं कहीं पर पर्वत के समान विशाल शरीर वाले और बड़े बलशाली मल्लयोद्धा गरज रहे थे और अनेक अखाड़ों में एक दूसरे से बहुत प्रकार (के दाँवपेच) से भिड़कर एक दूसरे को ललकार रहे थे।

करिजतन भटकोटिन्ह विकटतन नगर चहुँदिसि रच्छहीं।
कहिं महिप मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्हकी कथा कछुयक है कही।
रघुबीर-सर-तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पइहहि सही॥

जतन—यत्न, उपाय। बिकटतनु—विकट है शरीर जिनका (बहु०), भयंकर शरीर वाले। चहुँदिसि—चतुर्दिक, चारों ओर। रच्छहीं—रक्षा कर रहे हैं। महिष—भैंसा। मानुष—मनुष्य। धेनु—गाय। खर—गधा। अज—बकरा। खल निसाचर—दुष्ट राक्षस। भच्छहीं—खा रहे हैं। एहि लागि—इस लिए। कछुयक—कुछ, थोड़ा बहुत। सर—तालाब, अथवा शर, बाण। सही—ठीक, अच्छी।

करोड़ों विकट आकृतिवाले योद्धा नगर की चारों ओर से रक्षा कर रहे थे। कहीं पर दुष्ट निशाचर भैंसा आदि का भोजन कर रहे थे। तुलसीदास ने यहाँ पर इनका थोड़ा—बहुत वर्णन इस लिये कर दिया है कि ये सब श्रीरामचन्द्र जी के बाणरूपी तालाब के तीर्थ पर अपने अपने शरीर त्याग कर शुभ गति पाने वाले हैं.

अलंकार—'रघुबीर-सर-तीरथ' में श्लेष और रूपक।

पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार।
अति लघु रूप धरउँ निसि, नगर करउँ पइसार॥

पुर-रखवारे—नगर के रक्षक (तत्पु०)। लघु—छोटा। निसि—रात में। पइसार—प्रसार, प्रवेश।

बहुत से नगर-रक्षकों को (अथवा, नगर में बहुत से रक्षकों को) देख कर हनुमान् जी ने मन में सोचा कि, "रात के समय बहुत छोटा रूप धारण करके नगर में प्रवेश करूँगा।"

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निन्दरी॥
जानेहि नहीं मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥

मसक—मशक, मच्छर। नरहरि—नररूपी भगवान्, श्रीरामचन्द्र जी। निन्दरी—निरादर कर के। सठ—शठ। आहार—भोजन। जहाँ लगि—जहाँ तक, जितने।

(रात्रि में) हनुमान् जी मच्छर के समान अति छोटा रूप धारण करके और श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करके लंका के भीतर चले। (नगर के द्वार पर) लंकिनी नाम की एक राक्षसी ने उन से कहा, "तू मेरा निरादर करके चला जा रहा है! हे धूर्त, तू मेरा मर्म नहीं जानता (अर्थात् तू यह नहीं जानता कि मैं कौन हूँ और मेरी कैसी शक्ति है)। जितने भी चोर हैं वे सब मेरे भोजन हैं। (तू चोरी से जा रहा है, अतएव मैं तुझे भी खा लूँगी)"

मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर वमत धरनी ठन मनी॥
पुनि संभार उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥

मुठिका—मुष्टिका, घूँसा। हनी—मारा। वमत—उगलती हुई। धरणी—पृथ्वी। ठनमनी—लुढ़क गई। संभार—सँभल कर। पानि—पाणि, हाथ। ससंका—डरती हुई।

हनुमान् जी ने उसको एक भारी घूँसा मारा (जिससे) वह मुँह से खून उगलती हुई पृथ्वी पर लुढ़क पड़ी। फिर लंका पुनः सँभाल कर उठी और भयभीत होकर हाथ जोड़ कर विनती करने लगी।

जब रावनहिं ब्रह्म वर दीन्हा। चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा॥
विकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेऊँ नयन राम कर दूता॥

ब्रह्म, विरंचि—ब्रह्मा। चीन्हा—चिन्ह। तैं—तू। पुन्य—पुण्य। बहूता—बहुत। कर—का। तात—प्रिय, बन्धु।

(लंका बोली), "जब ब्रह्मा ने रावण को वर दिया था तब चलते समय उन्होंने मुझे यह चिन्ह बताया था कि जब तू बन्दर के मारने से विकल हो जाए तब तू राक्षसों का संहार हुआ समझना। सो हे तात, मेरा बड़ा पुण्य है कि मैंने राम के दूत का (अर्थात् तुम्हारा) अपनी आँखों से दर्शन किया।

तात स्वर्ग-अपवर्ग-सुख, धरिय तुला एक अङ्ग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसङ्ग॥

अपवर्ग—मोक्ष। तुला—तराजू। तूल न—तुलना नहीं कर सकता, बराबरी नहीं कर सकता। लव—क्षणभर, जरा सा। सतसंग—सत्संग, सज्जन का साथ (तत्पुरुष)।

"हे बन्धु, यदि स्वर्ग और मोक्ष दोनों के सुखों को एक साथ मिला कर तराज़ू के एक पल्ले में रक्खा जाए तो भी सब मिल कर उस सुख की बराबरी नहीं कर सकते जो जरा से भी सत्संग से प्राप्त होता है।—

प्रविसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसलपुरराजा॥
गरल सुधा रिपु करइ मिताई। गोपद सिन्धु अनल सितलाई॥
गरुअ सुमेरु रेनुसम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघुरूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

प्रविसि—प्रवेश करके। कोसलपुर-राजा—रामचन्द्र जी (तत्पु०) गरल—विष। सुधा—अमृत। रिपु—शत्रु। मिताई—मित्रता। गोपद—गाय का खुर। अनल—अग्नि। सितलाई—शीतलता। गरुअ—गुरु, भारी। रेनु—रेणु, रज, धूल। चितवा—देखा। पैठा—प्रविष्ट। सुमिरि—स्मरण करके।

"आप अपने हृदय में अयोध्या के स्वामी श्री रामचन्द्र जी का ध्यान करते हुए नगर में प्रवेश करके सब कार्य सिद्ध कीजिये।

(रामचन्द्र जी के प्रताप से) विष अमृत हो जाता है और शत्रु मित्रता करने लगता है। समुद्र गाय के खुर के समान (लाँघा जा सकता है) और अग्नि में शीतलता (पैदा हो सकती है)। रामजी कृपादृष्टि से जिसकी ओर देख लेते हैं उसके लिए विशाल सुमेरु पर्वत भी रेणु के समान हो जाता है।" (लंका के वचन सुनने और उसके चले जाने के बाद) हनुमान् जी ने बहुत छोटा रूप धारण कर लिया और रामचन्द्र जी का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

मन्दिर मन्दिर प्रति कर सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मन्दिर माहीं। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं॥
सयन किये देखा कपि तेही। मन्दिर महँ न दीख वैदेही॥

मंदिर—मकान, भवन, कक्ष। सोध—शोध, खोज। अगनितजोधा—अगणित योद्धा। दसानन—दशआनन (मुख) हैं जिसके (बहु०), रावण। सयन—शयन।

हनुमान् जी ने एक एक भवन में ढूँढ डाला। जगह जगह उन्होंने अनगिनती योद्धा देखे। फिर वह रावण के भवन के भीतर गए। (वह भवन) बड़ा विचित्र था जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ हनुमान् जी ने उसे (रावण को) सोता हुआ देखा। परन्तु मकान में सीता जी नहीं दिखाई दीं।

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥
रामायुध अङ्कित गृह, सोभा वरनि न जाइ।
नव तुलसीका वृन्द तहँ, देखि हरष कपिराइ॥

हरिमन्दिर—भगवान् का मन्दिर। भिन्न—अलग। रामायुध—रामचन्द्रजी के शस्त्रास्त्र। अंकित—चिन्हित। वृन्द—समूह।

तदनन्तर (हनुमान् जी को) एक सुन्दर मकान दिखाई दिया। उसमें अलग भगवान् का एक मन्दिर बना हुआ था। उस भवन की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। रामचन्द्र जी के शस्त्रास्त्रों के चिन्ह उसमें बने हुए थे और तुलसी वृक्षों के झुण्ड के झुण्ड वहाँ लग रहे थे। उसे देखकर हनुमान् जी को बड़ा हर्ष हुआ।

लंका निसि-चर-निकर-निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा॥
मन महुँ तरक करइ कपि लागा। तेही समय विभीषनु जागा॥

निकर—समूह। कर—का। तरक—तर्क, विचार।

हनुमान जी मन में तर्क करने लगे कि 'लंका में तो राक्षसों के समूह रहते हैं। यहाँ सज्जन का वास कहाँ से हुआ?' उसी समय विभीषण जागा।

राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरप कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सनु हठि करिहउँ पहिचानी। साधु तें होइ न कारज हानी॥

सुमिरन—स्मरण। एहिसनु—इससे। हठि—हठपूर्वक, जबर्दस्ती। पहिचान—प्रत्यभिज्ञान।

(विभीषण ने जागकर) 'राम, राम' कहकर भगवान् को स्मरण किया। हनुमान् जी ने हृदय में प्रसन्न होकर पहचान लिया कि यह कोई सज्जन है। इससे मैं हठपूर्वक जान-पहचान करूँगा, क्योंकि सज्जन (की जान-पहचान से) काम नहीं बिगड़ सकता।

विप्र रूप धरि बचन सुनाये। सुनत विभीषन उठि तहँ आये॥
करि प्रनाम पूछी कुसलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

कुसलाई—कुशलता। बुझाई—समझाकर, खुलासा करके।

(मन में इस प्रकार सोचकर हनुमान् जी ने) ब्राह्मण का रूप धारण कर कुछ वचन कहे जिन्हे सुनते ही विभीषण उठकर वहाँ

आगए। विभीषण ने प्रणाम कर उनसे कुशल प्रश्न पूछा और कहा हे विप्र अपना पूरा हाल-चाल समझाकर सुनाओ—

की तुम्ह हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह राम दीन-अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

की—किम्, क्या। दीन-अनुरागी—दीनोंपर स्नेह रखनेवाले। मेरे हृदय में (तुम्हारे प्रति) बड़ी प्रीति हो रही है।

क्या तुम भगवान् के सेवकों में से कोई हो, अथवा तुम दीनों पर अनुग्रह करने वाले (स्वयं) रामचन्द्र (ही) हो जो मुझे बड़भागी करने के लिए आए हो ?"

तब हनुमन्त कही सब, रामकथा निजनाम।
सुनत जुगलतन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम॥

जुगल—युगल, दोनों। तनु—शरीर। पुलक—रोमांच। गुनग्राम—गुणों का समूह (तत्पु०)।

तदन्तर हनुमान् जी ने रामचन्द्र जी का पूरा वृत्तान्त और अपना नाम सुनाया। उस समय दोनों के शरीर में रोमाञ्च हो आया और दोनों के मन भगवान् के गुणसमूह के ध्यान में मग्न हो गए।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानु-कुल-नाथा॥

रहनि—रहना, रहने का ढङ्ग। दसनन्हि—दशन, दाँत। महुँ—में। बिचारी—ग़रीब, असहाय। अनाथ—आश्रयहीन, असहाय। भानु-कुल-नाथ—श्री रामचन्द्रजी (तत्पु०)।

(विभीषण बोले) हे हनुमान् जी, हमारे रहन-सहन का हाल सुनो। (हम यहाँ पर इस प्रकार रहते हैं) जिस प्रकार

दाँतों के बीच में बेचारी जीभ (अर्थात् सदा संकट में रहते हैं)। हे बन्धु, सूर्यवंश के स्वामी भगवान् रामचन्द्र जी मुझे निःसहाय जानकर कभी मेरे ऊपर कृपा भी करेंगे ?

तामसतनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥

तामस—तमोगुण से भरा हुआ, मोह आदि से युक्त। साधन—उपाय। पदसरोज—चरणरूपी कमल (रूपक)। भा—हुआ। भरोस—विश्वास। अनुग्रह—कृपा। दरस—दर्शन।

"मेरा शरीर तमोगुणसे भरा हुआ है और भगवान् के चरण-कमलों में मेरी भक्ति भी नहीं है, न (भगवान् को प्राप्त करने का) कोई उपाय (ही मेरे पास है। इसीसे ऐसा प्रश्न पूछता हूं कि भगवान कभी कृपा भी करेंगे। परन्तु) हे हनुमान् जी, अब मुझे विश्वास होता है (कि भगवान् की कृपा होगी क्योंकि आप जैसे सज्जन से भेंट होना इस बात का शुभ लक्षण है) सज्जनों का समागम भी भगवान् की कृपा के बिना नहीं होता है। रामचन्द्र जी ने कृपा की है तभी तो तुमने भी मुझे हठपूर्वक। (अनायास) दर्शन दिया है।

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा ॥

रीति—स्वभाव। कवन—कौन। सबही बिधि—सब प्रकार से। कुलीन—अच्छे वंश का।

(हनुमान् जी ने कहा), "हे विभीषण, सुनो। प्रभु रामचन्द्र जी का यह स्वभाव है कि वह अपने सेवक पर सदा प्रीति

रखते हैं। (मुझे ही देखो) कहो, मैं कौन से बड़े ऊँचे वंश का हूँ। जाति का बन्दर हूं, चंचल स्वभाव है, सभी प्रकार से हीन हूं (यहाँ तक कि) जो कोई सुबह के समय हमारा नाम लेले तो उस दिन उसे भोजन भी न मिले।—

अस मैं अधम सखा सुनु, मोहूँ पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥

अधम—नीच। विलोचन—नेत्र। नीर—जल।

"सुनो सखा! मैं ऐसा अधम हूं, परन्तु मुझपर भी श्री रामचन्द्र जी ने कृपा की।" (यह कहकर) श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का स्मरण कर उनके नेत्रों में जल भर आया।

जानतहूं अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम-गुन-ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिस्रामा॥

बिसारी—विस्मृत करके, भूलकर। फिरहिं—भटकते फिरते हैं। अनिर्वाच्य—जो कहा न जा सके, अनिर्वचनीय। बिस्राम—विश्राम, शांति।

(हनुमान् जी फिर कहने लगे, अथवा तुलसीदास जी कहते हैं कि) "जब ऐसे (कृपालु) प्रभु को जानते हुए भी उसे भूलकर लोग भटकते फिरते हैं तो फिर वे दुखी क्यों न हों।" इस भाँति रामचन्द्र जी के गुणों के समूह का स्मरण करके हनुमान् जी को ऐसी शांति प्राप्त हुई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता। देखा चहउं जानकी माता।

फिर जिस, प्रकार जानकी जी वहाँ रहती थीं सो सब हाल विभीषण ने कह सुनाया। तब हनुमान् जी ने कहा, "सुनो भाई, मैं माता जानकी जी को देखना चाहता हूं।"

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ॥

जुगुति—युक्ति, उपाय । सकल—सब । तहवाँ—तहाँ । जहवाँ—जहाँ ।

विभीषण ने सीता जी से मिलने का सब उपाय सुनाया और हनुमान् जी विभीषण से विदा लेकर चले। हनुमान् जी फिर वही (छोटासा) रूप बना कर वहाँ गये जहाँ अशोक वन में सीता जी रहती थीं।

देखि मनहिँ महँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघु-पति-गुन-स्रेनी ॥

मनहिँ महँ—मनही मन में। बैठेहि—बैठे ही बैठे। निसि-जामा—रात्रि के (चारो) याम अर्थात् सारी रात । कृस—कृश, दुबला । तनु—शरीर । सीस—शीर्ष, सिर। बेनी—वेणी, चोटी। रघु-पति-गुन-श्रेणी—रामचन्द्र जी के गुणों की श्रेणी, रामचंद्र जी की गुणावली (तत्पु०),

हनुमान् जी ने सीता जी को देख कर मनही मन प्रणाम किया। सीता जी को बैठे ही बैठे सारी रात बीत जाती थी। उनका शरीर दुबला हो गया था और उनके सिर पर जटा और एक वेणी थी, हृदय में रामचन्द्र जी की गुणावली का जप करती रहती थीं।

निज पद नैन दिये मन, रामचरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन ॥

निज पद—अपने चरणों में । लीन—मग्न, लगा हुआ। भा—हुआ। दीन—गरीब, असहाय ।

सीता जी अपने चरणों पर दृष्टि लगाए हुई थीं और उनका मन रामचन्द्र जी (के ध्यान) में मग्न था । हनुमान् जी जानकी जी को इस दीन दशा में देखकर बड़े दुखी हुए ।

तरुपल्लव महँ रहा लुकाई । करइ विचार करउँ का भाई ॥
तेहि अवसर रावन तहं आवा । संग नारि बहु किये बनावा ॥

तरु पल्लव महुँ—वृक्ष के पत्तों में । रहा लुकाई—छिप गया । तेहि अवसर—उसी समय । नारि—स्त्रियां । किये बनावा—शृंगार किये हुईं ।

हनुमान् जी ने अपने को वृक्ष के पत्तों में छिपा लिया और सोचने लगे कि भाई, अब क्या करूँ । उसी समय रावण वहां आया । उसके साथ में बहुत सी स्त्रियां थीं जो शृंगार किए हुईं थीं ।

बहुविधि खल सीतहि समुझावा । साम दाम भय भेद देखावा ॥
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी । मन्दोदरी आदि सब रानी ॥
तव अनुचरी करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥

बहुविधि—बहुत तरह से । खल—दुष्ट ने । साम—शमन, समझा-बुझा कर शान्त करना । दाम—दमन, दबाव डालना । भेद—तोड़ना, दो मित्रों को आपस में लड़ा देना । सामदामदण्ड भेद—इन चारों उपायों का राजनीति में प्रयोग किया जाता है । कभी तो शत्रु को वश में करने के लिये उसे समझाबुझा कर शांत करते हैं, कभी किसी प्रकार का दबाव डालते हैं, कभी उसे दण्ड देते हैं अथवा कभी उसके सहायकों का उससे झगड़ा करा देते हैं । सुमुखी—सुन्दर मुखवाली (बहु०) । अनुचरी—पीछे चलने वाली, दासी । पन—प्रण, प्रतिज्ञा । बिलोकु—देखो मम ओरा—मेरी तरफ़ ।

दुष्ट रावण ने तरह तरह से सीताजी को समझाया। उनको बस में करने के लिए उसने साम, दाम, भय और भेद, चारों उपायों का प्रयोग किया। (रावण कहने लगा), "हे सुमुखी, सुनो, मन्दोदरी आदि जितनी भी मेरी रानियां हैं उन सब को मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है। तुम केवल एक बार (स्नेह दृष्टि से) मेरी ओर देख लो।"

तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।
सुनु दसमुख खद्योत-प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर-बान की॥
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

तृन—तृण, तिनका। ओट—आड़। अवधपति—अवध के स्वामी (तत्पु०), श्रीरामचन्द्र जी। सनेही—स्नेही। खद्योत—जुगुनू। प्रकासा—प्रकाश, चमक। नलिनी—कमलिनी। करइ बिकासा—विकास करती है, खिलती है। सुधि—खबर। सूने—शून्य, अकेले में। हरि आनेहि—चुरा लाया। मोहि—मुझको। निलज्ज—निर्लज्ज, बेशर्म। लाज—लज्जा, शर्म। तोही—तुझे।

सीता जी तिनके की ओट करके और अपने अति स्नेही श्रीरामचन्द्र जी की याद करके कहती हैं, "रावण, सुन, कहीं जुगुनू के प्रकाश से भी कमलिनी का फूल खिलता है? (वह तो सूर्य के प्रकाश से ही खिल सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि रावण जुगुनू के समान है और सीतारूपी कमलिनी केवल रामरूपी सूर्य के प्रकाश से ही प्रफुल्लित हो सकती है)। तू अपने मन में इस बात को समझ रख। दुष्ट, तुझे रामचन्द्र

जी के बाणों की खबर नहीं है ? धूर्त, मुझे अकेले में पाकर चुरा लाया ! नीच, निर्लज्ज, तुझे शर्म नहीं आती ?"

अलंकार—वक्रोक्ति

आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥

भानु—सूर्य । परुष—कठोर । काढ़ि—निकाल कर। असि—तलवार। खिसियान—खिसिया कर ।

अपने आपको जुगुनू के समान और श्रीरामचन्द्र जी को सूर्य के समान-ऐसे कठोर वचनों को—सुनकर रावण खिसिया गया और तलवार निकाल कर बोला—

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहि त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत न त जीवन हानी॥

तैं–तूने। अपमान—बेइज्जती। कटिहउँ—काटूँगा। कठिन–कठोर। कृपाना—कृपाण, तलवार। त—तु, तो। सपदि–फौरन, अभी। बाणी—बात।

"सीता, तूने मेरा अपमान किया है। मैं अपनी कठोर तलवार से तेरा सिर काट लूँगा। नहीं तो, फौरन मेरी बात मान ले, अन्यथा तुझे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।"

स्याम-सरोज-दाम-सम सुन्दर। प्रभु-भुज करि-कर-सम दसकंधर॥
सो भुज कण्ठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान मन मोरा॥

स्याम—श्याम, काला या नीला। सरोज—कमल । दाम—माला, पंक्ति। भुज—भुजा, बाहु। स्यामसरोज (कर्मधारय) की माला (तत्पु०) के समान (तत्पु०) करि—हाथी। कर—सूँड़। करिकर—हाथी की सूंड (तत्पु०)। दसकंधर—रावण। तव—तेरी। प्रमान–प्रमाण, प्रतिज्ञा।

(सीता जी ने उत्तर दिया), "हे रावण, नील कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूंड के समान (पुष्ट तथा बलवान जो) रामचन्द्र जी की भुजाएँ हैं वे ही मेरे कण्ठ में लग सकती हैं या तेरी तलवार। (अर्थात मेरी गर्दन का स्पर्श रामचन्द्र जी की ही भुजाएँ कर सकती हैं, तेरी भुजाएँ नहीं। तेरी तो केवल तलवार ही मेरे कण्ठ पर लग सकती है—मुझे तेरी तलवार से गर्दन कटवाना स्वीकार है परन्तु तेरी भुजाओं का आलिंगन नहीं, यह मेरे मन की (दृढ़) प्रतिज्ञा है।

अलंकार—उपमा।

चन्द्रहास हरु मम परितापं। रघुपति-विरह-अनल-संजातं॥
सीतल निसित बहसि बरधारा। कह सीता हरु मम दुखभारा॥

चन्द्रहास—चन्द्रमा की हँसी अर्थात् कान्ति के समान कान्ति है जिसकी (बहु०) रावण की तलवार। हरु—दूर कर। परितापं—दुःख को। विरह—वियोग। अनल—अग्नि। संजातं—उत्पन्न हुआ। रघुपति...संजातं—रामचन्द्रजी के विरहरूपी अग्नि से उत्पन्न हुआ (तत्पु०)। सीतल-शीतल, ठंडा। निसित-निशित, तेज। बहसि-(संस्कृत वह् धातु का वर्तमान काल का रूप) धारण करता है। बर—श्रेष्ठ। मम—मेरा। दुखभारा—दुःख का भार या बोझ (तत्पु०)।

"हे चन्द्रहास, श्रीरामचन्द्र जी की वियोगाग्नि से पैदा हुए मेरे दुख को दूर कर। तेरी श्रेष्ठ धार ठंडी (अर्थात् कठोर या निर्दय) और तेज है (इसलिए तेरे लिए यह काम कठिन नहीं है)।" सीताजी कहती हैं कि "(हे चन्द्रहास, मैं दुःख के बोझ से दब रही हूँ), तू मेरे इस दुःख के बोझ को दूर कर।"

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहुविधि त्रासहु जाई॥

मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढि कृपाना ॥

पुनि—फिर। धावा—दौड़ा। मयतनया—मयनामक राक्षस की पुत्री (तत्पु०) मन्दोदरी। बुझावा—समझाया। सकल—सब। निसिचरिन्ह—राक्षसियों को। त्रासहु—डराओ। जाई—जाकर। मास-दिवस महँ—एक महीने के दिनों में। मारब—मारूँगा।

सीताजी की बात सुनकर रावण उन्हें मारने को दौड़ा। (इस पर) मन्दोदरी ने नीति की बातें कह कर उसे समझाया। (मन्दोदरी के समझाने पर रावण वहाँ से चला गया और) तमाम राक्षसियों को बुलाकर उनसे बोला, "तुम लोग जाकर सीता को तरह तरह से डराओ-धमकाओ। यदि सीता ने एक महीने के भीतर मेरा कहना न माना तो मैं तलवार निकाल कर उसे मार दूंगा।"

भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिन्ह-वृन्द।
सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूपबहु मन्द ॥

भवन-मकान। पिशाचिन्हवृन्द-राक्षसियों का समूह (तत्पु०)। त्रास—भय। मंद—नीच।

(यह कह कर) रावण अपने घर चला गया और इधर राक्षसियाँ तरह तरह के नीच रूप धारण करके सीताजी को भय दिखाने लगीं।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम-चरन-रति-निपुन विवेका ॥
सबन्हौ बोलि सुनायेसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना ॥

रति—प्रेम। निपुन—निपुण, चतुर। रामचरन रति निपुन—राम के चरणों की रति में निपुण (तत्पु०) विवेक—ज्ञान, विचार शीलता। सबन्हौ—सबको। सेइ—सेवा करके (सेव् धातु का पूर्वकालिक रूप) हित—भलाई। सपना—स्वप्न।

(उन राक्षसियों में) एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी जिसका रामचन्द्र जी के चरणों में बड़ा प्रेम था और जो बड़ी ज्ञानमती थी। उसने सब राक्षसियों को बुलाकर अपना सुपना सुनाया और कहा, "सीता जी की सेवा करके अपनी भलाई करो"।

सपने बानर लङ्का जारी। जातुधान-सेना सब मारी ॥
खर-आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित-सिर खंडित-भुज-बीसा ॥

जातुधान—यातुधान, राक्षस। खर—गधा। आरूढ़—चढ़ा हुआ। खरआरूढ़ (तत्पु०) नगन—नग्न, नंगा। दससीस—दश शीर्ष (सिर) हैं जिसके (बहु०) मुंडित सिर-जिसका सिर मुँडा हुआ है (बहु०)। खंडित भुजबीसा—कटी हुई हैं बीसों भुजाएँ जिसकी (बहु०)।

"सुपने में (मैंने देखा है कि) एक बन्दर ने तमाम लंका को जला दिया है और तमाम राक्षसों की सेना मारी गई है; रावण नंगा गधे के ऊपर चढ़ा हुआ है, उसके सिर मुडे हुए हैं और उसकी बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लङ्का मनहुँ बिभीषन पाई ॥
नगर फिरी रघुबीर-दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई ॥
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी ॥

सो—सः, वह। दच्छिन—दक्षिण। दिसि (संस्कृत दिक् शब्द का अधिकरण कारक में रूप)—दिशा में। मनहु—मानो। बोलि पठाई—बुला भेजी। होइहि—होगा। गये—बीतने पर।

"इस रूप में रावण दक्षिण दिशा की ओर जारहा है और लंका मानो विभीषण को मिल गई है। नगर में रामचन्द्र जी की दुहाई फिर गई है और उसके बाद प्रभु रामचन्द्र जी ने सीता को बुला भेजा

है। चार दिन बीतते ही यह सुपना सत्य हो जाएगा, इस व
को मैं पुकार कर (अर्थात् जोर देकर) कहे देती हूँ।"

तासु वचन सुनि ते सब डरीं। जनक-सुता के चरनन्हि परीं॥

तासु—उसका। ते—वे। चरनन्हि—चरणों में।

त्रिजटा की बात सुन कर वे सब भयभीत हो गईं औ
(क्षमा के लिए) श्री सीता जी के चरणों में गिर पड़ीं।

जहँ तहँ गईं सकल तब,सीता कर मन सोच।
मासदिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच॥

कर—के। पोचु—दुष्ट, नीच।

तदनन्तर सब पिशाचिनियाँ जहाँ-तहाँ चली गईं और सीत
जी के मन में सोच होने लगा कि, "महीने के (तीस) दिन बीतं
पर दुष्ट राक्षस मुझे मार डालेगा।"

त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति-संगिनि तैं मोरी॥
तजउँ देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनइ को स्रवन सूलसम बानी॥

सन—से। कर जोरी—हाथ जोड़ कर। बिपति-संगिनि—
दुःख की साथिनि (तत्पु०)। तैं—तू। देह—शरीर। बेगि—
शीघ्रता करके, जल्दी से। दुसह—कठिनता से सहने योग्य, जो
मुश्किल से सहा जा सके। आनि—आनीय, लाकर। काठ—काष्ठ
लकड़ी। रचु—बना। सयानी—सज्ञान (स्त्री०), चतुर। स्रवन—
श्रवण, कानों से। सूल—शूल

सीता जी हाथ जोड़ कर त्रिजटा से बोलीं, "हे माता, तू मेरी
विपत्ति की साथिन है। मैं अब अपना शरीर छोड़ना चाहती हूँ

क्योंकि रामचन्द्र जी का यह दुःसह वियोग मुझसे नहीं सहा जाता। (अतः) तुम अब जल्दी से उपाय करो और लकड़ी लाकर मेरे लिए चिता बना दो, तदनन्तर उसमें अग्नि लगा देना। हे चतुर, तुम मेरे प्रति अपनी प्रीति को (इस प्रकार) सत्य (प्रमाणित) करो। रावण के इन शूल के समान (कष्ट देने वाले) शब्दों को कौन सुना करे (अर्थात् मुझसे अब ये शब्द नहीं सुने जाते)।"

सुनत बचन पद गहि समुझायेसि। प्रभु-प्रताप-बल-सुजस सुनायेसि॥
निसि न अनल मिलु सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निजभवन सिधारी॥

पद गहि—पैर पकड़ कर। सुजस—सुयश। प्रताप बल सुजस (द्वन्द्व)। प्रभु (का) प्रताप बल सुजस (तत्पु०)। निसि—रात में। अनल—अग्नि।

(सीता जी के ये वचन सुन कर त्रिजटा ने) उनके चरण पकड़ कर उन्हें समझाया और (धैर्य बँधाने के लिए) रामचन्द्रजी के प्रताप, बल और उनकी कीर्ति को सुनाया। उसने कहा, "रात्रि में अग्नि नहीं मिलेगी" और यह कह कर वह अपने घर चली गई।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखियत प्रगट गगन अङ्गारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥

विधि—ब्रह्मा। भा—हुआ। प्रतिकूल—विरोधी, शत्रु। प्रगट—प्रकट। गगन—आकाश (में)। अवनि—पृथ्वी (पर) पावकमय—अग्नि से भरा हुआ। ससि—शशि, चन्द्रमा। स्रवति—गिराता है। आगी—अग्नि। विटप—वृक्ष। नूतन—नए।

किसलय—कोंपल। देहि—संस्कृत दा धातु का आज्ञा, मध्यम पुरुष, एक वचन का रूप। निदान—अन्त।

सीता जी (अपने मन में) कहने लगीं, "ब्रह्मा ही प्रतिकूल हो गया है। न तो आग ही मिलेगी, न कष्ट ही दूर होगा। आकाश में (अनेक ताराखपी) अंगारे प्रकट दिखलाई दे रहे हैं, परन्तु पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता (जो मुझे अग्नि दे सके)। अग्नि से भरा हुआ चन्द्रमा (भी) मानो मुझे भाग्यहीन समझ कर अग्नि नहीं गिराता। हे अशोक (नाम वाले) वृक्ष, तुम्हीं मेरी विनय सुनो और अपने नाम को सच्चा करके मेरे शोक को दूर करो। (अर्थात्, अशोक—जिससे शोक न हो—ऐसा तुम्हारा नाम है। अतः मेरे शोक को हरण करने से मेरे लिए तुम 'यथा नाम तथा गुण' वाले सच्चे अ-शोक हो जाओगे) तुम्हारे नए नए कोंपल अग्नि के समान हैं, अतएव तुम्हीं मुझे अग्नि देकर मेरा अन्त क्यों नहीं कर देते?"

अलङ्कार—तारों और चन्द्रमा में जो तेज़ चमक है सीता जी की दृष्टि में वह अग्नि के समान है और सीता जी इन दोनों पदार्थों को अग्निमय समझ कर उनसे अग्नि की कामना करती हैं। अशोक वृक्ष के नए नए लाल कोंपल भी लाल लाल अंगारों के समान दिखाई देते हैं, अतएव सीता जी उससे भी इसी हेतु प्रार्थना करती हैं। 'देखियत.. अंगारा' में अतिशयोक्ति अलंकार है और पूरी पंक्ति में अतिशयोक्ति तथा रूपक का संकर। 'पावक...आगी' में भी अतिशयोक्ति है और पूरी पंक्ति में अतिशयोक्ति गर्भित हेतूत्प्रेक्षा। इसके आगे की पंक्ति में काव्यलिंग है। 'नूतन... समाना' में उपमा है।

देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हरखि उठि कर गहेउ ॥

विरहाकुल—विरह से आकुल (तत्पु०)। छन—छण, लहमा। कलप—कल्प, युग। मुद्रिका—अँगूठी। गहेउ—लिया।

हनुमान् जी के लिए, सीता जी को इस प्रकार रामवियोग से व्यथित देख कर, वह क्षण एक युग के समान बीता (अर्थात् काटना कठिन होगया)। तब (वृक्ष पर बैठे हुए) हनुमान् जी ने हृदय में विचार करके श्रीरामचन्द्र जी की अँगूठी ऊपर से गिरा दी। (सीता जी ने समझा कि मानो उनकी प्रार्थना सुन कर) अशोक वृक्ष ने अंगारा दिया है और उन्होंने हर्षित होकर उठकर उसे अपने हाथ में ले लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम-नाम-अंकित अति सुन्दर ॥
चकित चितव मुँदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी ॥

रामनाम-अंकित—रामचन्द्र जी के नाम से अङ्कित (तत्पु०)। चकित—आश्चर्य में हो कर। चितव—देखा। हरष—हर्ष। विषाद—शोक। अकुलानी—व्याकुल हुई।

तब श्री सीता जी ने उस अँगूठी को देखा। उस मनोहर और सुन्दर अँगूठी पर रामचन्द्र जी का नाम खुदा हुआ था। उन्होंने आश्चर्य से उस अँगूठी को देखा और पहचान लिया। उनके हृदय में हर्ष और विषाद के भाव (उत्पन्न) हुए और वह (इन भावों के वशीभूत हो) अकुलाने लगीं।

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया ते अस रच नहिं जाई ॥
सीता मन विचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥

अजय—जिसको न जीता जा सके।

(सीता जी को इस प्रकार भगवान् की अँगूठी पाकर आश्चर्य हुआ कि कहीं राक्षसों ने चालाकी करके धोखा देने के लिए जादू से नकली अँगूठी तो नहीं बना ली है, परन्तु फिर उन्होंने सोचा कि), "श्रीरामचन्द्र जी तो अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है (अथवा उनके साथ कौन छल कर सकता है) ? ऐसी अँगूठी माया द्वारा नहीं बनाई जा सकती । (यह वास्तव में रामचन्द्र जी की ही अँगूठी है) ।" सीता जी (इस प्रकार) मन में तरह तरह के विचार करने लगीं । उसी समय हनुमान् जी मधुर वाणी में बोले ।

रामचन्द्र-गुन बरनइ लागा । सुनतहि सीता कर दुख भागा ॥
लागी सुनइ स्रवन मन लाई । आदिहुँ ते सब कथा सुनाई ॥

रामचन्द्र-गुन—रामचन्द्र जी के गुण (तत्पु०) । बरनइ लागा —वर्णन करने लगे । सुनतहि—सुनतेही । मन लाई—मन लगा कर, ध्यान से । आदिहुँ ते—आरम्भ से ही ।

हनुमान् जी रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करने लगे जिन्हें सुनतेही सीताजी का दुःख दूर हो गया । सीता जी (प्रभु की उस गुणावली को) ध्यान से कान लगा कर सुनने लगीं । हनुमान् जी ने आरंभ से सब हाल कह कर सुनाया ।

स्रवनामृत जेहि कथा सुहाई । कही सो प्रगट होत किन भाई ॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ । फिरि बैठी मन बिसमय भयउ ॥

स्रवनामृत—श्रवण या कानों का अमृत (तत्पु०), जो कानों को अमृत की तरह सुख देने वाला है । जेहि—जिसने । सुहाई—मनोहर । किन—क्यों नहीं । निकट—पास । फिरि बैठी—मुड़ कर बैठ गईं । बिसमय—विस्मय, आश्चर्य ।

(रामचन्द्र जी का हाल सुन कर सीता जी ने कहा), "जिस किसी ने यह कानों को अमृत के समान सुख देने वाली कथा सुनाई है वह भाई, सामने क्यों नहीं आता। तब हनुमान् जी उनके पास गए। (बन्दर हनुमान् जी को देख कर) सीता जी को आश्चर्य हुआ और वह मुड़ कर (दूसरी ओर को मुँह करके) बैठ गईं।

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुना निधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम कहँ सहिदानी॥

सपथ—शपथ। तुम्ह कहँ—तुम्हारे लिए। सहिदानी—पहिचान के लिए चिह्न स्वरूप।

हनुमान् जी ने कहा, "हे माता जानकी जी, मैं दयासागर श्री रामचन्द्र जी की सच्ची शपथ खाता हूँ कि मैं उनका दूत हूँ। हे माता, यह अँगूठी मैं लाया हूँ। रामचन्द्र जी ने इसे बतौर चिन्ह के तुम्हारे लिए दिया है।"

नर बानरहि संग कहु कैसे। कही कथा भइ संगति जैसे॥
कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिन्धु कर दास॥

नर बानरहि—नर और बानर का। संगति—भेट, मुलाक़ात, बिस्वास—विश्वास, यक़ीन। मन क्रम बचन—मन, कर्म और वाणी से (द्वन्द्व)। कृपासिन्धु—कृपा के सिंधु (तत्पु०), दयासागर

जानकी जी ने पूछा, "(तुम तो बन्दर हो और रामचन्द्र जी मनुष्य। यह तो) कहो कि बन्दर और मनुष्य का संग कैसे हुआ?" तब हनुमान् जी ने, जिस प्रकार उनका रामचन्द्र जी के साथ समागम हुआ, सो सब कथा कह सुनाई। कपि के प्रेम पूर्ण वचनों को सुन कर (या कपि के वचनों को प्रेम के साथ सुन

कर) सीता जी को विश्वास हो गया। उन्होंने जान लिया कि हनुमान् जी मन, कर्म और वचन से रामचन्द्र जी के सेवक हैं।

हरि-जन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥
बूड़त बिरह-जलधि हनुमाना। भयेहु तात मोकहुँ जल-जाना॥

हरिजन—भगवान् का सेवक (तत्पु०)। पुलकावलि—रोमाञ्च। बूड़त—डूबती हुई। विरहजलधि—विरह का समुद्र (रूपक)। जलजाना—जलयान, नौका।

हनुमान जी को रामचन्द्र जी का सेवक जान कर सीता जी को उनके प्रति बहुत प्रेम हुआ, उनके नयनों में जल भर आया और शरीर में रोमांच हो आया (रोंगटे खड़े होगए)। वह बोली, "हे तात हनुमान, विरह के सागर में डूबती हुई मेरे लिए तुम नौका-स्वरूप हो गए (अर्थात् मुझे तुम्हारे आने से बड़ा सहारा मिला)

अलंकार—दूसरी पंक्ति में रूपक है।

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख-भवन खरारी॥
कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

कुसल—कुशल। अनुज—छोटा भाई। सुखभवन—सुखका स्थान (तत्पु०) खरारि—खर नामक राक्षस के अरि अर्थात शत्रु (तत्पु०)। कोमलचित—कोमल है चित्त जिनका (बहु०) केहि हेतु—किस कारण से। निठुराई—निष्ठुरता, कठोरता।

"मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूं। तुम अब छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित श्री रामचन्द्र जी का, जो सुख के धाम तथा खर राक्षस के शत्रु हैं, कुशल-समाचार कहो। हे कपि, रघुनाथजी तो बड़े दयालु हृदय वाले हैं, फिर किस कारण से उन्होंने (मेरी ओर से) निठुरता धारण करली?

सहज बानि सेवक-सुख-दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम-मृदु-गाता॥

सहज—स्वाभाविक। बानि—आदत। कबहुँक—कभी। सुरति—याद, स्मृति। स्याम-मृदु-गाता—श्याम और मृदु गात्र हैं जिनका (बहु०) स्याम—श्याम, साँवला। मृदु—कोमल। गात—गात्र, शरीर।

"रामचन्द्र जी की यह स्वाभाविक बान है कि वह अपने सेवक को सुख देने वाले हैं। वह कभी मेरी याद भी करते हैं? हे तात, कोमल, साँवले शरीर वाले रामचन्द्र जी को देख कर कभी मेरे नेत्र शीतल भी होंगे?"

बचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदुबचन बिनीता॥

बारि—जल। नयन भरि बारी—नेत्रों में आँसू भर कर। हौं—मैं। निपट—बिलकुल। बिसारी—विस्मृत, भुला दी गई। बिनीत—नम्र।

यह कहते कहते सीता जी से (आगे) नहीं बोला गया और उनके नेत्रों में जल भर आया (वह विलाप करने लगीं), "हा नाथ, तुमने तो मुझे बिलकुल भुला दिया,,। हनुमान् जी सीता जी को इस तरह विरह से व्याकुल देख कर मधुर और नम्र वाणी में कहने लगे—

मानु कुसल प्रभु अनुज-समेता। तव दुख दुखी सु-कृपा-निकेता॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्ह तें प्रेम राम के दूना॥

सु—सुन्दर। निकेत—घर, आगार। सु-कृपा-निकेता—कृपाके सुन्दर आगार (कर्म० और तत्पु०) जनि—नहीं, मत।

जननी—माता । ऊना—कम, छोटा । जिय—जीव, दिल । दूना—द्विगुण ।

"माता, कृपा के आगार रघुनाथ जी अपने भाई सहित सकुशल हैं, और तुम्हारे दुःख से दुखी हैं। माता, तुम अपना जी छोटा मत करो (श्रीरामचन्द्र जी के लिए) जितना तुम्हारा प्रेम है, उससे दूना रामचन्द्र जी को (तुम्हारे लिए) है—

रघुपति कर सन्देस अब, सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गद्‌गद भयउ, भरे विलोचन नीर ॥

रघुपतिकर—रघुनाथ जी का । संदेश—समाचार । धीर—धैर्य, धीरज । विलोचन—नेत्र ।

"हे माता, अब हृदय में धीरज धर कर रामचन्द्र जी का संदेश सुनो।" ऐसा कहते कहते हनुमान् जी गद्‌गद हो गये और उनके नेत्रों में जल भर आया।

कहेउ राम वियोग तव सीता । मो कहँ सकल भये विपरीता ॥
नव-तरु-किसलय मनहुँ कृसानू । काल-निसा-सम निसि ससि भानू ॥

वियोग—विरह (में) विपरीत—उलटा । नव—नया । तरु—वृक्ष । कृसानू—कृशानु, अग्नि । भानु—सूर्य । मनहु—मानो । निसा—रात्रि ।

(हनुमान् जी रामचन्द्र जी का सन्देश इस प्रकार सुनाने लगे कि), "रामचन्द्र जी ने कहा है कि—(हे सीता, तुमसे अलग हो कर मेरे लिए सब (पदार्थों के गुण) विपरीत होगए वृक्षों के नये नये किसलय मानों अग्नि हैं। रात्रि कालरात्रि के समान और चन्द्रमा सूर्य के समान है, (अर्थात् चन्द्रमा की शीतल चाँदनी भी मेरे लिये जलन उत्पन्न करती है)।

अलङ्कार—उपमामूल विरोधाभास ।

कुवलयविपिन कुंत-बन-सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जेहित रहे करत तेइ पीरा। उरग-स्वास-सम त्रिविध समीरा॥

कुवलयविपिन—कमलवन (तत्पु०) कुन्त—भाला। सरिस—सदृश, समान। वारिद—मेघ। तपत—तप्त, खौलता हुआ। बरिसा—बरसाते हैं। हित—हितकारी, सुखदायक। पीरा—पीड़ा, कष्ट। उरग—सर्प। स्वास—श्वास, साँस। त्रिविध—तीन तरह की अर्थात् शीतल मन्द और सुगन्धयुक्त। समीर—वायु।

"कमलों का वन (जो हमेशा हर्षदायक होता है अब) भालों के वन के समान (दुखदायक) मालूम होता है। बादल (जब बरसते हैं तो) मानो जलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो (पदार्थ पहले) सुख देने वाले थे वे अब कष्ट देते हैं। तीन प्रकार की पवन साँप की फुंकार के समान (जहरीली और प्राणहर) प्रतीत होती है।

अलङ्कार—पूर्ववत्।

कहेहु ते कछु दुख घटि होई। काहि कहउँ यह जान न कोई॥
तत्व प्रेमकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मन मोरा॥

कहेहुते—कहने से भी। घटि होई—कम हो जाता है। काहि—किससे। तत्व—मर्म, असलियत। एकु—एक, केवल।

"कहने से भी दुःख कुछ कम हो जाता है। परन्तु मैं कहूँ किससे, मेरे इस दुख को कोई समझ नहीं सकता। मेरे और तुम्हारे प्रेम के मर्म को, हे प्रिये, केवल मेरा मन ही जानता है।

सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरस एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

तोहिपाहीं—तुम्हारेपास। जानु—जानलो। एतनेहि माहीं—इतनेही में। तन—तनु, शरीर। तन सुधि—शरीर की खबर (तत्पु०)। तेहि—उसको।

"वह मन सदा तुम्हारे पास रहता है। बस इतने ही से (अर्थात्, मेरा मन तुम्हारे पास ही रहता है—इतने ही से) तुम मेरे प्रेमरस को समझलो" स्वामी रामचन्द्र जी का यह सन्देश सुन कर सीता जी प्रेम में मग्न हो गईं और उन्हें अपने शरीर की भी खबर नहीं रही।

कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरि राम सेवक-सुख-दाता॥
उर आनहु रघु-पति-प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

सेवक सुखदाता—सेवक को सुख देने वाले (तत्पु०)। उर—हृदय। (में)। उर आनहु—हृदय में ध्यान कीजिए। कदराई—कायरता, हृदय की कमजोरी।

हनुमान्‌जी बोले, "हे माता, हृदय में धीरज धरो और अपने सेवकों को सुख देनेवाले रामजी की याद करो। हृदय में रघुनाथ जी की महिमा का ध्यान करो और मेरे वचन सुनकर हृदय की दुर्बलता दूर करो।

निसि-चर-निकर पतंगसम, रघु-पति-बानकृसानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥

पतंग—पतिंगा, जो दीपक शिखा के चारों ओर मँडराकर अपने प्राण दे देता है।

"राक्षसों के समूह पतिंगे के समान और रामचन्द्र जी के बाण अग्नि के समान हैं। माता आप हृदय में धैर्य धारण कीजिए और रामचन्द्र जी के बाण रूपी अग्नि में निशाचर रूपी पतिंगों को जला हुआ समझो। (अर्थात् जिस प्रकार पतिङ्गा स्वयं ही

दीपशिखा के पास पहुँच कर अपने प्राण गँवाता है, दीपक को उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता उसी प्रकार रामचन्द्र जी के बाणों द्वारा अब राक्षस शीघ्र और अनायास ही मारे जाएँगे)—

अलङ्कार—उपमा और रूपक।

जौ रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलम्बु रघुराई॥
रामबान रबि उये जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥

जौं—यदि। होति पाई—पाई होती। विलम्ब—देर। राम बान (तत्पु०)-रबि—रामचन्द्र जी के बाण रूपी सूर्य (रूपक)। उये—उदित, उदय होने पर। तमबरूथ—अन्धकार का समूह (तत्पु०)—जातुधान की (का) तमबरूथ—यातुधान रूपी तम-बरूथ (रूपक)।

"यदि रामचन्द्र जी को तुम्हारी खबर मिली होती तो वह (तुम्हें छुड़ाने में) देर नहीं करते, (क्योंकि) रामचन्द्र जी के बाणरूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसरूपी अन्धकार समूह कैसे रह सकता है ? (अर्थात् जैसे सूर्य के निकलने पर अंधकार नहीं रह सकता उसी प्रकार रामचन्द्र जी के बाणों के सामने राक्षस नहीं रह सकते)—

अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई। प्रभु आयसु नहिं रामदोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित अइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लेइ जइहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जस गइहहिं॥

जाउँ लेवाई—ले जाउँ। आयसु—आज्ञा। अइहहिं, जइहहिं, गइहहिं—आएँगे, जाएँगे, गाएँगे। तिहुँपुर—तीनोलोक (अर्थात स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) में।

"हे माता, रामचन्द्र जी की शपथ (खाकर कहता हूँ कि), मैं तो तुम्हें अभी लिवाजाऊँ परन्तु मुझे रामचन्द्र जी ने आज्ञा नहीं दी है। तुम कुछ दिन धीरज रक्खो, तब श्रीरामचन्द्र जी वानरों सहित यहाँ आकर और राक्षसों को मार कर तुम्हें ले जाएँगे। नारद आदि मुनि तीनोलोकों में (उनका और तुम्हारा) यश गाएँगे।"

हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधान भट अति बलवाना॥
मोरे हृदय परम सन्देहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निजदेहा॥

भट—योद्धा। निज—अपना। देह—शरीर।

श्रीसीता जी ने कहा—हे पुत्र, सब बन्दर तुम्हारे ही समान हैं क्या? मुझे तो बड़ा सन्देह होता है क्योंकि राक्षस लोग बड़े योद्धा और बलशाली हैं। यह सुनकर हनुमान् जी ने अपना (असली) शरीर प्रकट किया।

कनक-भूधराकार-सरीरा। समर भयङ्कर अति-बल-बीरा॥
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघुरूप पवनसुत लयऊ॥

कनक—सुवर्ण। भूधर—पर्वत। कनकभूधराकार—सुवर्ण पर्वत (अर्थात् सुमेरु) के समान आकार वाला (वहु०)। समर भयंकर—युद्ध में भयानक। भरोसा—विश्वास। लयऊ—धारण करलिया।

(हनुमान्‌जी का वह) शरीर सुमेरु पर्वत के समान विशाल, युद्ध में भय पैदा करने वाला और बड़ा बलशाली था। उसे देखकर सीता जी के मन में विश्वास हुआ। तब हनुमान् जी ने फिर छोटा सा रूप धारण कर लिया।

सुनु माता साखामृग, नहिं बल-बुद्धि-बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हिं, खाइ परम लघु ब्याल॥

शाखामृग—बन्दर (अर्थात् शाखाओं पर का मृग) । विशाल—बड़ा । गरुड़हिँ—गरुड़ को । व्याल—सर्प । गरुड़—एक पक्षी का नाम है जो विष्णु भगवान् की सवारी है ।

(हनुमान् जी ने कहा), "हे माता, सुनो । हम लोग तो जाति के बन्दर हैं, हममें न तो बड़ा बल ही है और न बड़ी बुद्धि ही । परन्तु स्वामी रामचन्द्र जी के प्रताप से (सब कुछ संभव है, हम लोग सब कुछ कर सकते हैं; क्योंकि उनका प्रताप ऐसा है कि उस के कारण) बहुत छोटा सा सर्प भी गरुड़ तक को खा ले सकता है (यद्यपि वास्तव में, गरुड़ सर्पों का स्वाभाविक शत्रु है और सर्पों को खा जाता है)"

मन सन्तोष सुनत कपि बानी । भगति-प्रताप-तेज-बल-सानी ॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना । होहु तात बल-सील-निधाना ॥

भगति...सानी—भक्ति, प्रताप, तेज, और बल से सनी हुई (तत्पु०) । आशिष—आशीर्वाद । निधान—खज़ाना ।

कपि हनुमान् जी की भक्ति, प्रताप, तेज और बल से भरी हुई वाणी को सुन कर सीता जी के मन को संतोष हुआ । उन्होंने उनको रामचन्द्र जी का प्यारा समझ कर आशीर्वाद दिया कि "हे तात, तुम बल और शील का खजाना बनो ।—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू । करहिँ बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहिँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेममगन हनुमाना ॥

अजर—जिसे जरा अर्थात् बुढ़ापा न हो । छोहू—प्रेम । कान—कर्ण । निर्भर—अधिक, पूर्ण । गुणनिधि, प्रेममग्न (तत्पु०) ।

हे पुत्र, तुम अजर होओ, अमर होओ, गुणों का खजाना होओ, रामचन्द्र जी का तुम्हारे ऊपर खूब प्रेम होवे । प्रभु

रामचन्द्र जी तुम्हारे ऊपर कृपा रक्खें।" अपने कानों से ऐसा (आशीर्वाद सुनकर) हनुमान् जी अत्यंत प्रेमरस में मग्न हो गए (उनके हृदय में अत्यंत प्रेमरस उमड़ आया)।

वार वार नायेसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ विख्याता॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥

सीस—शीर्ष, सिर। कीश—वन्दर। कृतकृत्य—सफल, जिस ने अपना कृत्य अर्थात् कार्य पूरा कर लिया हो (बहुव्रीहि)। अमोघ—अचूक। विख्यात—प्रसिद्ध। अतिशय—बहुत। रूख—वृक्ष।

हनुमान् जी ने वार वार सीताजी के चरणों में सिर नवाया और वन्दर हनुमान् जी हाथ जोड़ कर बोले। "हे माता, यह प्रसिद्ध है कि तुम्हारा आशीर्वाद अचूक है (झूठा नहीं होता, इससे) मैं कृतकृत्य होगया। अब माता, सुनो, मुझे यहाँ वृक्षों पर सुन्दर फल लगे देखकर बड़ी भूख लग आई है॥"

सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥

बिपिन—वन, वाग। रजनी-चर—रात्रि में फिरने वाले राक्षस।

सीता जी ने कहा, "पुत्र, सुनो, यहाँ वाग में बड़े बड़े राक्षस, जो बड़े योद्धा हैं, रखवाली किया करते हैं।"

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥

हनुमान् जी ने उत्तर दिया, "हे माता, यदि तुम अपने हृदय में प्रसन्न हो (कर मुझे आज्ञा दो) तो मुझे उन राक्षसों का डर नहीं है।"

देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु ॥

निपुन—चतुर । मधुर—मीठे ।

हनुमान जी को बुद्धि और बल में चतुर देखकर जानकी जी ने कहा, "हे तात, जाओ और रामचन्द्र जी के चरणों का हृदय में ध्यान धर के मीठे मीठे फलों को खाओ ।"

चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा । फल खायेसि तरु तोरइ लागा ॥
रहे तहां बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाय पुकारे ॥

नाइ—झुकाकर, नवाकर । तोरइ लागा—तोड़ने लगे । तहाँ—वहाँ ।

हनुमान जी श्रीसीता जी को सिर नवा कर चले और बाग में पहुँचे । वहाँ वह फल खाने और वृक्षों को तोड़ने लगे । वहाँ बहुत से योद्धा रखवाले (बाग की रक्षा कर रहे) थे । उनमें से कुछ को हनुमान जी ने मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से फरियाद की कि—

नाथ एक आवा कपि भारी । तेहि असोक बाटिका उजारी ॥
खायेसि फल अरु बिटप उपारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ॥

उजारी—नष्ट कर दिया । उपारे—उत्पाटित, उखाड़े । रच्छक—रक्षक । मर्दि मर्दि—सं० मर्द धातु से पूर्व कालिक, मसल मसल कर । मही—पृथ्वी ।

"हे नाथ, एक बहुत बड़ा बन्दर आगया है । उसने अशोक वाटिका को उजाड़ डाला, फलों को खाया और वृक्षों को उखाड़ फेंका है । बाग के रखवालों को उसने मसल मसल कर पृथ्वी पर पटक दिया ।"

सुनि रावण पठये भट नाना। तिन्हहिं देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गये पुकारत कछु अधमारे॥

पठयेउ—प्रस्थापित, भेजे। रजनीचर—राक्षस। संघारे—संहृत, मारे।

यह सुन कर रावण ने बहुत से योद्धा भेजे। उन्हे देख कर हनुमान् जी ने गर्जना की। सब राक्षसों को हनुमान् जी ने मार डाला। कुछ (बचे हुए) अधमरे होकर पुकारते हुए (रावण के पास) गए।

पुनि पठयेउ तेहि अछयकुमारा। चला संग लेइ सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

अपारा—जिनका पार न हो, अनगिनती। गहि—ग्रहण कर, लेकर। तर्जा—तर्जना की, धमकाया, ललकारा। निपाति—गिराकर। महाधुनि—महाध्वनि, जोर की आवाज से।

फिर रावण ने अपने पुत्र अक्षय कुमार को भेजा जो अपने साथ अगणित योद्धाओं को लेकर रवाना हुआ। उसको आता हुआ देख कर हनुमान् जी ने हाथ में वृक्ष लेकर ललकारा और तदनन्तर उसे मार गिरा कर बड़े जोर की आवाज में गर्जना की।

कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलयेसि धरि धूरि॥
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि॥

धूरि—धूलि। मर्कट—बन्दर। भूरि—बहुत। बलभूरि—बहुत बलवाला (बहु०)

हनुमान् जी नें कुछ राक्षसों को मार डाला, कुछ को पीस डाला और कुछ को धर कर धूल में मिला दिया। कुछ (बचे हुओं) ने फिर जा कर रावण से पुकार की कि हे प्रभु, बन्दर बड़ा बलवान् है।"

सुनि सुतवध लंकेस रिसाना । पठयेसि मेघनाद बलवाना ॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही । देखिय कपिहि कहाँ कर आही ॥

लंकेस—लंका का ईश (तत्पु०), रावण । रिसाना—क्रोधित हुआ । मेघनाद—मेघ (गर्जन) के समान नाद (शब्द) है जिसका (बहु०) । जनि—नहीं, मत । देखिय—देखना चाहिए । आही—अस्ति, है । कहाँ कर—कहाँ का ।

अपने पुत्र अक्षयकुमार का वध सुन कर रावण क्रोधित हुआ और उसने (दूसरे पुत्र) बलशाली मेघनाद को भेजा । (मेघनाद से रावण ने कहा), "हे पुत्र, उसे मारना मत, बल्कि उसे बाँध लाना । बन्दर को देखना चाहिए कि कहाँ का है ।"

चला इन्द्रजित अतुलित-जोधा । बन्धुनिधन सुनि उपजा क्रोधा ॥
कपि देखा दारुन भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥

इन्द्रजित—इन्द्र को जीतने वाला (तत्पु०) मेघनाद । अतुलित—जिसकी तुलना या बराबरी न की जा सके, अद्वितीय । जोधा—योद्धा । बन्धुनिधन—भाई की मृत्यु (तत्पु०) दारुन—दारुण, भयंकर । भट—योद्धा, वीर । धाया—दौड़ा ।

अद्वितीय वीर मेघनाद (अपने पिता के वचन सुनकर) चला । (उसके मन में) भाई अक्षयकुमार के मारे जाने की बात सुन कर क्रोध उत्पन्न हुआ । हनुमान् जी ने देखा कि एक भयंकर वीर आ रहा है । वे दाँत किटकिटा कर गरजे और उसके ऊपर दौड़े ।

अति बिसाल तरु एक उपारा । बिरथ कीन्ह लंकेश कुमारा ॥
रहे महा भट ताके संगा । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ॥

बिरथ-रथविहीन । लंकेशकुमार—लंकेश का बेटा (तत्पु), मेघनाद ।

हनुमान् जी ने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और मेघनाद को रथविहीन कर दिया (अर्थात् उसके रथ को नष्ट-भ्रष्ट करके मेघनाद को उस पर से उतार दिया)। उसके साथ जो बड़े बड़े योद्धा थे उनको पकड़ पकड़ कर हनुमान् जी ने अपने शरीर से मसल डाला।

तिन्हहिं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हेसि बहुमाया। जीति न जाय प्रभंजनजाया॥

ताहिसन—उससे। बाजा—लड़ने लगा। जुगल-युगल दोनों। मुठिका—मुष्टिका, घूँसा। मुरुछा—मूर्छा, बेहोशी। बहोरि—फिर। प्रभंजन—वायु। जाया—पैदा किया हुआ, पुत्र। प्रभंजन जाया—वायुका पुत्र (तत्पु०) हनुमान् जी।

उन राक्षसों को मार कर फिर हनुमान् जी मेघनाद से लड़ने लगे। दोनों आपस में इस तरह भिड़ गए मानों दो गजराज हों। हनुमान् जी उसके घूँसा मार कर पेड़ पर जा चढ़े और मेघनाद क्षणभर के लिए बेहोश हो गया। वह फिर उठा और तरह तरह के छल-प्रपंच करने लगा, परन्तु हनुमान् जी किसी तरह नहीं जीते जाते थे।

ब्रह्म अस्त्र तेइ साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्म सर मानउँ, महिमा मिटइ अपार॥

ब्रह्मास्त्र—विशेष दैवी शक्तिवाला एक अस्त्र जिसके देवता ब्रह्मा जी हैं। साधा—सँभाला। महिमा—बड़ाई, मर्यादा। सर—शर, बाण।

(जब हनुमान् जी किसी प्रकार न जीते जा सके तो अन्त में उनके ऊपर छोड़ने के लिए) उसने ब्रह्मास्त्र सँभाला। (हनुमान्

जी उस ब्रह्मास्त्र को भी अपनी शक्ति के प्रभाव से बेकार कर सकते थे परन्तु उन्होंने सोचा कि–) "यदि मैं ब्रह्मबाण को नहीं मानता हूं तो (अनन्त ईश्वरीय महिमा) नष्ट होती है।"

ब्रह्म बान कपि कहुँ तेइ मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा ॥
तेइ देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लेइ गयऊ ॥

कपिकहँ—हनुमान्‌जी को। परतिहुँ बार—गिरते समय भी। कटक—सेना। मुरुछित—मूर्छित, बेहोश। नागपाश—एक प्रकार का जादू या माया की शक्ति वाला जाल या फंदा।

मेघनाद ने हनुमान् जी को ब्रह्मबाण मारा। (उसके लगने पर) गिरते गिरते भी हनुमान् जी ने (मेघनाद की) सेना का संहार किया। मेघनाद ने देखा कि हनुमान् जी मूर्छित हो गए हैं। तब वह उनको नागफांस से बाँधकर ले गया।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ज्ञानी ॥
तासु दूत कि बँधतर आवा। प्रभुकारज लगि कपिहि बँधावा ॥

जासु—जिसका। भव—संसार। भवबन्धन—संसार का बंधन (तत्पु०)। ग्यानी—ज्ञानी। बँधतर—बन्धन के तले, बन्धन के वश में। प्रभुकारजलगि—स्वामी के कार्य के लिए (तत्पु०)।

(इस प्रसंग पर शिव जी पार्वती से कहते हैं कि) "हे भवानी सुनो, जिस ईश्वर का नाम जप कर ज्ञानी लोग संसार के बन्धन को तोड़ देते हैं (अर्थात् संसार में जन्म लेने और मरने के बन्धन से छूटकर मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं) उस (रामरूपी ईश्वर) के दूत हनुमान् जी क्या बन्धन के वशीभूत हो सकते थे ? (अर्थात् नहीं।) परन्तु स्वामी का कार्य करने के लिए उन्होंने (अपनी इच्छा से) अपने को बँधवा दिया।"

कपिबंधन सुनि निसिचर धाये। कौतुक लागि सभा सब आये॥
दस-मुख-सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥

धाये—दौड़े। कौतुक लागि—कुतूहल, उत्सुकता से। दस-मुख सभा—दस-मुख हैं जिनके (बहु०) उस रावण की सभा (तत्पु०)। दीखि—देखी। प्रभुताई—महिमा।

हनुमान् जी के बन्धन की बात सुनकर तमाम राक्षस कुतूहल-वश रावण की सभा में दौड़ आए। हनुमान् जी ने वहाँ पहुँच कर रावण की सभा देखी। उस सभा की भारी महिमा को कहा नहीं जा सकता।

कर जोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महँ गरुड़ असंका॥

कर जोरे—हाथ जोड़े। सुर—देवता। दिशिप—दिक्पाल (हिन्दू शास्त्रों का कथन है कि प्रत्येक दिशा की रक्षा के लिए अलग अलग देवता नियत हैं। उन्हीं को दिक्पाल कहते हैं) भृकुटि—क्रोध से भौंह सिकोड़ना। संका—शंका, भय। अहि—सर्प। गन—गण, समूह। असंका—अशंक, निर्भय।

उस सभा में देवता और दिक्पाल नम्रता से (रावण के सामने) हाथ जोड़े हुए थे और भय से उसकी भृकुटी की ओर देख रहे थे। (परन्तु वहाँ का) प्रताप देखकर हनुमान् जी को कुछ भी भय नहीं हुआ, (वह वहाँ उसी तरह निडर भाव से खड़े रहे) जैसे सर्पों के बीच में गरुड़ निःशंक रहता है।

कपिहि बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत-बध-सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय बिषाद॥

बिलोकि—देख कर। दसानन—दस आनन (मुख) हैं जिसके (बहु०) दुर्बाद—दुर्वचन, कड़वे वचन। सुत-बध-सुरति—सुत

(अक्षय कुमार) के वध की स्मृति (तत्पु०)। उपजा—उत्पादित, पैदा हुआ। विषाद—दुःख, शोक।

हनुमान् जी को देख कर रावण कुछ कटु वचन कह कर हँसा। फिर (जब) उसने अपने पुत्र की हत्या की याद की तो उसके हृदय में शोक उत्पन्न हुआ।

कह लंकेश कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेसि बन खीसा॥
की धौं स्रवन सुने नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥
मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा॥

लंकेश—लंका का स्वामी रावण (तत्पु०)। कवन—कौन। घालेसि— मारा। केहि के बल—किसके बल पर, किसके भरोसे पर। बन—अशोक वाटिका। की धौं—अथवा क्या? स्रवन—श्रवण, कान। बाधा—भय।

रावण ने कहा, "ओ बन्दर तू कौन है। तूने किसके भरोसे पर अशोकवाटिका नष्ट की? क्या तूने मुझे (मेरे नाम को) कानों से नहीं सुना है? रे दुष्ट, मैं तुझे बड़ा निडर देखता हूँ। तूने राक्षसों को किस अपराध पर मारा है? बता दुष्ट, क्या तुझे अपने प्राणों का भय नहीं है?

सुनु रावण ब्रह्मांड-निकाया। पाइ जासु बल बिरचित माया॥
जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जाबल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥
धरे जो बिबिध देह सुर त्राता। तुम्हसे सठन्ह सिखावनु दाता॥
हरकोदंड कठिन जेहि भंजा। तोहि समेत नृपदल-मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

जाकेबल-लवलेस तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जाहि की, हरि आनेसि प्रिय नारि॥

ब्रह्माण्ड—लोक। निकाय—समूह। ब्रह्माण्डनिकाया—लोकों का समूह (तत्पु०) जासु—जिसका। विरंचि—ब्रह्मा। हर—महादेव। ईश—विष्णु। सृजत—पैदा करते हैं। हरत—नष्ट करते हैं। सहसानन—सहस्रानन, सहस्र आनन हैं जिसके (बहु०) शेषनाग (जिनके हज़ार फन कहे जाते हैं)। अंडकोश—पृथ्वी। कानन—जंगल। विविध—अनेक तरह तरह की। सुरत्राता—देवताओं का रक्षक (तत्पु०)। सिखावनु—शिक्षण। सिखावनु-दाता—शिक्षा का देनेवाला (तत्पु०)। कोदण्ड—धनुष। हर-कोदण्ड—शिव जी का धनुष (तत्पु०)। भंजा—तोड़ा। मद—अभिमान। नृप दल मद—राजाओं के समूह का मद (तत्पु०)। गंजा—नष्ट किया। अतुलित—जिसकी बराबरी न हो सके, अद्वितीय। लवलेश—बहुत थोड़ा अंश। जितेहु—तूने जीता।

(हनुमान् जी ने उत्तर दिया), "हे रावण, सुन, जिसका बल पाकर माया (ईश्वरीय शक्ति) ने तमाम लोकों की रचना की; जिसके बलसे, हे रावण, ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस संसारको पैदा करते हैं, पालते हैं और नष्ट करते हैं; जिसके बल से शेषनाग वन और पर्वतों सहित इस पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करते हैं; जो (समय समय पर अवतार लेकर) तरह तरह के शरीर धारण करता है; जो देवताओं का रक्षक और तुमसे दुष्टों को (दंड दे कर या संहार करके) शिक्षा देने वाला है; जिसने (सीता-स्वयंवर के समय) महादेव जी के कठोर धनुष को तोड़ा और (इस प्रकार) तुम्हारे तथा अन्य राजाओं के समूह का अभिमान नष्ट किया; जिसने अद्वितीय पराक्रम वाले खर, दूषण, त्रिशिरा और बाली, सब का बध किया और जिसके बल के अत्यंत थोड़े अंश से तूने भी चर और अचर सब को जीता है; जिसकी प्रिय पत्नी सीता को तू चुरा लाया है, उसी का मैं दूत हूं।

नोट—(१) ब्रह्माण्ड, अण्डकोश:—सृष्टि के पूर्व में सर्वत्र अंधकार ही अंधकार था। तदनन्तर ईश्वर ने जल की सृष्टि की और उस जल में बीज वपन किया। उससे एक सोने का अंडा पैदा हुआ। ईश्वर स्वयं उस अंडे से ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने उस अंडे के दो टुकड़े किए। एक टुकड़े से स्वर्ग लोक आदि की रचना हुई और दूसरे से मर्त्य लोक की। इसके बाद उन्होंने दस प्रजापति अथवा मानस पुत्र उत्पन्न किए और इन दस प्रजापतियों ने सृष्टि के शेष कार्य को पूरा किया। इस प्रकार प्रारम्भिक सोने का अंडा ही सृष्टि का मूल रूप है और इसी लिए यहाँ पृथ्वी तथा लोकों के लिए 'अण्डकोश' और और 'ब्रह्माण्ड' शब्दों का प्रयोग हुआ है।

(२) हर कोदण्ड...गञ्जा:—जनकपुर में सीता-स्वयम्वर के समय जो धनुष-यज्ञ हुआ था उसी का संकेत है। जनक जी के यहाँ एक बहुत बड़ा शिव जी का धनुष रक्खा था। वह इतना भारी था कि कोई उसे उठा न सकता था। एक बार प्रसंगवश सीता जी ने उसे उठाकर दूसरे स्थान पर हटा दिया। यह देख कर समान बल वाले वर की कामना से जनक जी ने प्रण किया कि जो कोई उस धनुष को उठा सकेगा उसी के साथ वह अपनी पुत्री सीता जी का विवाह करेंगे। एतदर्थ उन्होंने धनुष-यज्ञ किया जिसमें रावण आदि अनेक पराक्रमी राजा आए। जब वह धनुष किसी के उठाए नहीं उठा तो रामचन्द्र जी ने उसे तोड़ दिया। सब राजा झेंप गए और उनका बल-मद चूर चूर हो गया।

(३) खर, दूषण, त्रिशिरा अरु बाली:—खर, दूषण और त्रिशिरा रावण के बन्धु-बांधवों में से थे और उसके सेनापति थे। जब रामचन्द्र जी पञ्चवटी में रहते थे तो रावण की बहन शूर्पणखा उन पर मोहित होकर उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट

करने लगी। उसकी इस धृष्टता पर लक्ष्मण जी ने उसके नाक कान काट लिए। तव वह रोती हुई अपने भाइयों के पास गई और खर, दूषण तथा त्रिशिरा उसका वदला लेने के लिए रामचन्द्र जी से युद्ध करने को आए। रामचन्द्र जी ने उन्हे मार दिया।

(४) वाली सुग्रीव का भाईथा और सुग्रीव की स्त्री को छीन कर ले गया था। सुग्रीव उसके भय से ऋष्यमूक पर्वत पर छिप कर रहता था। जव रामचन्द्र जी वहाँ पहुँचे तो सुग्रीवने उन्हें अपनी दुःख-कथा सुनाई। रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को वालि से युद्ध करने भेजा और जव दोनों भाइयों में युद्धहो रहा था तव उन्होंने वाण मार कर वालि का वध किया।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर वालि सन करि जस पावा। सुनि कपि वचन बिहँसि वहरावा॥

सन—से। जस—यश, कीर्ति। समर—युद्ध। वहरावा—टाल गया।

"तुम्हारी महिमा को मैं खूब जानता हूँ। सहस्रावाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और वालि के साथ युद्ध करके तुमने जो यश पाया था (उस सब को याद करो)।" हनुमान् जी के ये वचन सुन कर रावण ने हँस कर टाल दिया।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा।

नोट—(१) सहसबाहु सन परी लराई:—रावण नर्मदा नदी के किनारे पूजा-पाठ करने जाया करता था। एक रोज़ उसने देखा कि नदी उलटी दिशा मे वह रही है। इस पर उसे आश्चर्य हुआ और इसका रहस्य जानने के लिए नदी के किनारे किनारे चल दिया। थोड़ी दूर जा कर उसने देखा कि सहस्रावाहु नदी में जल-क्रीड़ा कर रहा है और अपनी भुजाएँ जल में फैला रक्खी हैं

जिससे जल का प्रवाह रुक कर उलटा बहने लगा है। सहस्रावाहु अपनी क्रीड़ा के समय उसे आया हुआ देख कर क्रुद्ध हुआ और दोनों में युद्ध ठना। रावण युद्ध में पराजित होकर सहस्रावाहु का बन्दी हुआ।

(२) समर बालि सन:—रावण ने जब अपने बाहुबल से तमाम देवताओं आदि को जीत लिया तो उसे अभिमान हो गया। अतः जब उसे मालूम हुआ कि बालि नाम का एक वीर अभी बचा हुआ है तो वह उसे भी जीतने के लिए गया। परन्तु बालि को वरदान था कि जो शत्रु सामने आकर उससे लड़ेगा उसका आधा बल उसमें (बालि में) आजाएगा। इस प्रकार रावण से युद्ध होने पर रावण का आधा बल बालि के शरीर में चला गया और बालि बड़ी आसानी से रावण को अपनी बगल में दबा कर ले गया।

खायउँ फल मोहि लागी भूखा। कपि-सुभाव तें तोरउँ रूखा॥
सब के देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहिं कुमारग-गामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे॥

भूखा—बुभुक्षा। रूख—वृक्ष। स्वामी—हनुमान् जी व्यंग्य या ताने से रावण को स्वामी कहते हैं। कुमारग गामी—कुमार्ग या बुरी राह पर चलने वाले (तत्पु०), दुष्ट राक्षसों ने। तेहि पर—इस बात पर। तनय—पुत्र।

(हनुमान् जी रावण के दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं)—"मुझे भूख लगी थी इसलिए मैंने (तुम्हारी वाटिका के) फल खाए। (मैं बन्दर हूँ अतः) बंदर की आदत से मैंने वृक्ष तोड़े। हे स्वामी, अपना देह तो सभी को बड़ा प्यारा होता है, सो दुष्ट राक्षस जब मुझे मारने लगे तो जिन्होंने मुझे मारा उनको मैंने भी मारा। इस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध लिया।—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥
बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

कइ—की। जोरि कर—हाथ जोड़ कर। मान—अभिमान। काजा—कार्य।

"मुझे अपने बाँधे जाने की लज्जा नहीं है (क्योंकि मैं तो जैसे हो वैसे) अपने प्रभु रामचन्द्र जी का कार्य करना चहता हूँ। हे रावण, मैं हाथ जोड़ कर तुम से विनय करता हूँ तुम अभिमान छोड़ कर मेरी सीख को सुनो।—

देखहु तुम निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत-भय-हारी॥
जाके बल अति काल डेराई। जो सुर असुर चरोचर खाई॥
तासों बैरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै॥
प्रणतपाल रघुनायक, करुना सिन्धु खरारि।
गये सरन प्रभु राखिहहिं, तब अपराध बिसारि॥

भगतभयहारी—भक्त के भय को हरने वाले (तत्पु०)। चर—चलने वाले जीव। अचर—स्थिर रहने वाले जीव और पदार्थ। प्रणतपाल—प्रणत अर्थात् विनीत के पालक (तत्पु०)। खरारी—खर के शत्रु (तत्पु०)। बिसारि—विस्मृत करके, भूल कर।

"तुम अपने कुल का विचार करके देखो और भ्रम को छोड़ कर भक्तभयहारी भगवान् का भजन करो। जिसके डर से काल अर्थात् मृत्यु तक को अत्यंत भय होता है, जो देवता, राक्षस, चर और अचर सब को खाजाता है उस से कभी बैर मत करो और मेरे कहने से सीता जी को वापिस कर दो। दया के सागर, खरारि रामचन्द्र जी नम्रता से शरण में जाने वाले

की रक्षा करते हैं। उनकी शरण में जाने पर वे तुम्हारे अपराधों को भूल कर तुम्हारी रक्षा करेंगे।

राम-चरन-पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम करहू ॥
रिषि-पुलस्ति-जस बिमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होहु कलंका ॥

रामचरणपंकज—रामचन्द्र जी के चरणरूपी कमल (तत्पु० और रूपक) रिसि—ऋषि। रिसिपुलस्तजस—ऋषि पुलस्त्य का यश (तत्पु०); रावण पुलस्त्य ऋषि का वंशज था। मयंक—मृगांक, चन्द्रमा। कलंक—चन्द्रमा के भीतर जो धब्बा दिखलाई देता है। विमल—निर्मल, स्वच्छ।

"रामचन्द्र जी के चरण कमलों को हृदय में धारण करो और (उनकी कृपा प्राप्त कर) लंका के ऊपर अचल राज्य करो तुम्हारे पूर्वज पुलस्त्य ऋषि का यश चन्द्रमा के समान है; उस चन्द्रमा में तुम कलंक (के समान) मत बनो।—

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु विचारि त्यागि मद मोहा ॥
बसनहीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन-भूषित बर नारी ॥

गिरा—वाणी। न सोहा—नहीं सोहती। वसन—वस्त्र। वसनहीन—कपड़े के बिना (तत्पु०)। सुरारी—देवताओं का अरि अर्थात् शत्रु (तत्पु०)। वर—श्रेष्ठ।

"हे देवताओं के शत्रु रावण, तुम मद और मोह को छोड़ कर विचार करके देखो। (जिस प्रकार) सब भाँति के आभूषणों से सजी हुई सुन्दर स्त्री बिना वस्त्रों के (अर्थात् नंगी) अच्छी नहीं मालूम होती (उसी प्रकार) वाणी (चाहे वह कितनी ही शिष्ट और गर्वित क्यों न हो) राम नाम (के उच्चारण) के बिना अच्छी नहीं लगती।—

राम-विमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं बरषि गये पुनि तवहिं सुखाहीं॥

मूल—उद्गम। सरितन्ह—नदियों का। बरषि गये—वर्षा के बाद। जाइ रही—निरर्थक, व्यर्थ, गई-बीती।

"राम के विमुख (मनुष्य) की धन-दौलत और महिमा गई हुई के ही समान है, उसका पाना न पाना एक सा है, (जिस प्रकार) वे नदियाँ निरर्थक हैं जिनका उद्गम जल वाले स्थान से नहीं होता; (वे) वर्षा के बीतने पर तुरन्त ही फिर सूख जाती हैं।—

सुनु दसकण्ठ कहउँ पन रोपी। विमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस्र विष्णु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥

पन रोपी—प्रण के साथ, दावे के साथ। त्राता—रक्षक। कोपी—कोऽपि, कोई भी। अज—ब्रह्मा। द्रोही—शत्रु, बैरी।

"हे रावण सुन, मैं दावे के साथ कहता हूँ कि रामचन्द्र जी से विमुख मनुष्य का कोई भी रक्षक नहीं है। राम जी का बैरी होने पर तुझको हजार महादेव, विष्णु और ब्रह्मा भी नहीं बचा सकते।—

मोहमूल बहु-सूल-प्रद, त्यागहु तम-अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपा सिन्धु भगवान॥

मोहमूल—मोह है जड़ है जिसकी (बहु०)। बहुसूलप्रद—बहुत पीड़ा को देने वाला (तत्पु०)। तम-अभिमान—तमोगुण से भरा हुआ अभिमान (मध्यमपदलोपी कर्मधारय)।

"इस लिए तुम तमोगुण से भरे हुए अभिमान को, मोह जिसकी जड़ है, और जो अनेक कष्टों का देने वाला है, छोड़ दो और दया के समुद्र भगवान् रामचन्द्र जी का भजन करो।"

जदपि कही कपि अतिहितबानी। भगति-बिबेक-बिरति-नय-सानी ॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ज्ञानी ॥

बानी—वाणी। विरति—वैराग्य। नय—नीति।

हनुमान् जी ने (इस प्रकार) यद्यपि बड़े हित की बात कही जो भक्ति, विवेक, वैराग्य और नीति से सनी हुई थी तथापि अभिमानी रावण (ने उस पर ध्यान नहीं दिया और वह) हँसकर बोला, "यह बन्दर हमें बड़ा ज्ञानी गुरु मिला है।"

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही ॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मति भ्रम तोहि प्रगट मैं जाना ॥

प्रगट—स्पष्ट।

"रे दुष्ट, मुझे शिक्षा देना आरम्भ किया है! तेरी मृत्यु समीप आ गई है।" हनुमान् जी ने कहा, "इसका उलटा होगा। मुझे स्पष्ट मालूम हो गया कि तेरी बुद्धि को भ्रम हो गया है (अर्थात् तेरी बुद्धि बिगड़ गई है)"

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन सहित बिभीषन आये ॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता ॥
आन दंड कछु करिय गोसाईं। सबही कहा मन्त्र भल भाई ॥

खिसिआना—चिढ़ा। बेगि—जल्दी से। मूढ—मूर्ख। आन—अन्य। गोसाईं—गोस्वामी। मंत्र—सलाह।

हनुमान् जी की यह बात (उत्तर) सुनकर रावण बहुत चिढ़ गया (और बोला)—"जल्दी से इस मूर्ख के प्राण क्यों नहीं ले लेते?" यह सुनते ही राक्षस हनुमान् जी को मारने के लिए दौड़े।" तब मंत्रियों सहित विभीषण (रावण के पास) आए तथा सिर नवाकर और बहुत तरह से विनय करके

(बोले)—"यह बात नीति के विपरीति है। दूत को नहीं मारना चाहिए। हे स्वामी, आप कोई दूसरा दण्ड इसे दे दीजिये।" (विभीषण की इस राय को सुनकर) सब ने कहा, "भाई, यह सलाह अच्छी है।"

सुनत बिहँसि बोला दसकन्धर। अंग भंग करि पठइय बंदर॥
कपि कै ममता पूँछ पर, सबहिं कहउँ समुझाय।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाय॥

अंगभंग—अंग का भंग (तत्पु०), अंग का नाश। पठइय—भेजा जाए। ममता—मोह, प्रेम। बोरि—डुबो कर। पावक—अग्नि। पट—कपड़ा। पूँछ—पुच्छ।

विभीषण की सलाह सुनकर और सब को समझाकर रावण ने हँसकर कहा, "बन्दर का कोई अंग नष्ट कर इसे वापिस भेजना चाहिए।" बन्दर का प्रेम अपनी पूँछ से होता है। (इस लिए) कपड़े को तेल में भिगो कर और फिर इसकी पूँछ में बांध कर आग लगा दो।—

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निजनाथहिं लेइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखेउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

"बिना पूँछ के यह बन्दर जब वापिस जायगा तो दुष्ट अपने स्वामी को ले आएगा। जिनकी इसने इतनी अधिक प्रशंसा की है मैं भी उनकी बड़ाई को देखूँगा।"

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भई सहाय सारद मैं जाना॥

सारद—शारदा, सरस्वती।

रावण के वचन सुन कर हनुमान् जी मनही मन (प्रसन्नता से) हँसे और (मन में कहने लगे कि) "मैं समझ गया। सरस्वती जी सहायक हुई हैं।"

नोट—शारदा या सरस्वती वाणी की देवता हैं। उन्होंने रावण की जिह्वा पर बैठ कर हनुमान् जी के मतलब की बात उससे कहला दी, इसी से हनुमान् जी प्रसन्न हुए।

जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचइ मूढ़ सोइ रचना॥
रहा नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।

रचना—बनाना। सोइ रचना रचइ लागे—वही रचना रचने लगे; अर्थात जिस प्रकार रावण ने बताया था उसी प्रकार हनुमान् जी की पूँछ को बनाने लगे। बसन—वस्त्र। घृत—घी। खेला—क्रीड़ा।

रावण के वचन सुन कर राक्षस उसी प्रकार की रचना करने लगे। (उस समय) हनुमान् जी ने एक खेल किया—उनकी पूँछ (इतनी) बढ़ गई (कि उसके लपेटने तथा भिगोने के लिए) नगर भर में कपड़ा, घी या तेल न रहा-(नगर भर का कपड़ा तेल आदि चुक गया)।

कौतुक कहँ आये पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछि प्रजारी॥

कौतुक कहँ—उत्सुकता से। पुरबासी—नगर के लोग। हाँसी—हँसी। प्रजारी—प्रज्वलित,जलाई। फेरि—घुमा कर।

(यह तमाशा देखने के लिये) नगर के लोग उत्सुकतावश वहाँ आगए और हनुमान् जी को लात मारने तथा उनकी हँसी करने लगे। सब लोग ढोल और ताली बजाते थे। (तदनन्तर) उन्होंने हनुमान् जी को (आनन्द से) नगर में घुमाकर उनकी पूंछ में आग लगादी।

पावक जरत देखि हनुमन्ता। भयउ परम लघुरूप तुरन्ता।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निशा-चर-नारी॥

निबुकि—कूदकर। कनक—सोना। अटारी—अट्टालिका। निशाचर नारी—राक्षसी (तत्पु०)।

हनुमान् जी ने आग को जलता हुआ देखकर तुरन्त छोटा सा रूप धारण कर लिया। हनुमान् जी कूदकर सुवर्ण की अटारी पर चढ़गए। (उनको देखकर) राक्षसियाँ डर गईं।

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास॥
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥

हरि प्रेरित—भगवान् से प्रेरित किए हुए (तत्पु०)। लाग—लग गया। बढ़ि लाग अकास—(अतिशयोक्ति अलंकार)।

उसी समय भगवान् की प्रेरणा से उंचासों (४९) प्रकार की वायु चलने लगीं। (यह देख कर) हनुमान् जी ने अट्टहास करके (बड़े जोर से) गर्जना की और वह बढ़कर आकाश से लग गए (अर्थात् उन्होंने अपना शरीर बहुत बड़ा कर लिया)।

देह बिसाल परम हरुआई। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहुकोटि कराला॥

हरुआई—हलकापन। मन्दिर—भवन, मकान। जरइ—जलता था। भा—हुए। झपट—झपटती थीं। लपट—आग की लपट। बहुकोटि—करोड़ों। कराल—भयंकर।

हनुमान् जी का शरीर बड़ा तो हो गया परन्तु उसमें बड़ा हलकापन था, (जिससे) हनुमान् जी एक मकान से दूसरे मकान पर (आसानी से) चढ़ जाते थे। नगर जलने लगा और लोगों की दुर्दशा होने लगी। आग की करोड़ों भयंकर लपटें उछल रहीं थी।

तात मातु हा सुनिय पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिँ होई। बानर रूप धरे सुर कोई॥

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥

सुनिय—सुनाई देती थी। उबारा—उद्धार करेगा, बचाएगा। अवज्ञा—निरादर। साधु—सज्जन। कर—का। अनाथ—जिसका कोई रक्षा करने वाला न हो।

(उस समय चारो ओर यही) चिल्लाहट सुनाई देती थी—"हा पिता, हा माता, इस समय हमें कौन बचावेगा। हम जो कहते थे कि यह बन्दर नहीं है, बल्कि बन्दर के रूप में कोई देवता है (सो किसी ने नहीं सुना)। सज्जन के अनादर करने का ऐसा ही नतीजा होता है। नगर ऐसा जल रहा है जैसे अनाथों का नगर हो (अर्थात् जिसका कोई स्वामी या रक्षक ही नहीं है)"।

जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥
ता कर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मँझारी॥

जारा—जल गया। निमिष—उतना समय जितना एक पलक मारने में लगता है। अनल—अग्नि। जेहि—जिसने। सिरजा—सृज् धातु का रूप, बनाया। मँझारी—मध्ये, में।

तमाम नगर पलक मारते मारते जल गया, केवल बिभीषण का गृह नहीं जला। (शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि)—"हे पार्वती, वह (बिभीषण का गृह) इस कारण से नहीं जला कि जिस (भगवान्) ने अग्नि को बनाया है हनुमान् जी उसीके तो दूत हैं।" हनुमान् जी ने उलट-पुलट कर (चारों तरफ़ से) तमाम लंका जला दी और फिर समुद्र में कूद पड़े।

पूँछि बुझाई खोइ स्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

स्रम—श्रम, थकावट। बहोरि—फिर। कर जोरि—हाथ जोड़ कर।

समुद्र में अपनी पूंछ को बुझाकर और अपनी थकान को दूर कर तथा पुनः छोटा सा रूप धारण करके हनुमान् जी हाथ जोड़ कर सीता जी के सामने आ खड़े हुए।

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ा मणि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥

चीन्हा—चिन्ह। चूड़ामनि—सिर में पहनने की मणि। हरप—हर्ष।

(हनुमान् जी ने सीता जी से कहा), "हे माता, मुझे चिन्ह के लिए कोई चीज़ दीजिए, जैसे रामचन्द्र जी ने (अंगूठी) दी थी," तब सीता जी ने चूड़ामणि उतार कर दी। हनुमान् जी ने प्रसन्न होकर उसे ले लिया।

कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा॥
दीन-दयालु-विरुद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

अस—ऐसा, इस प्रकार। कामा—इच्छा। पूरन कामा—इच्छा पूर्ण करने वाले। विरुद—यश, कीर्ति। संभारी—सँभाल कर, याद करके।

सीता जी बोलीं, "हे बन्धु हनुमान्, मेरा प्रणाम इस प्रकार कहना कि—"हे नाथ, आप सब तरह से पूर्णकाम हैं आप दीनों पर दया करने वाले हैं, ऐसी अपनी कीर्ति की रक्षा कर आप मेरे भारी संकट को दूर कीजिए" :—

तात सक्र-सुत-कथा सुनायहु। बानप्रताप प्रभुहिं समुझायहु॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहिं जियत नहि पावा॥

सक्र—शक्र, इन्द्र। शक्रसुत—जयन्त। बानप्रताप—राम जी के बाण की महिमा (तत्पु०)।

"हे तात हनुमान् जी, रामचन्द्र जी को तुम जयन्त की कथा सुनाना और उन्हें उनके बाण की महिमा की याद दिलाना। यदि स्वामी रामचन्द्र जी एक महीने के भीतर नहीं आए तो फिर मुझे जीती नहीं पाएँगे।—

नोट—शक्रसुत—कथा:—जब रामचन्द्र जी पञ्चवटी में रहते थे तो इन्द्र का बेटा जयन्त उनके बल की परीक्षा लेने के लिए कौए का रूप धारण करके पहुँचा और सीता जी के पैर में चोंच मार कर उड़ गया। इस पर रामचन्द्र जी ने क्रोध करके उसके ऊपर सींक का बाण छोड़ा। उस बाण से रक्षा पाने के लिए जयन्त तमाम देवताओं के पास हो आया परन्तु कोई भी उसकी रक्षा में समर्थ न हुआ और बाण बराबर उसके पीछे लगा रहा अन्त में नारद जी के उपदेश से वह फिर रामचन्द्र जी की शरण में आया। रामचन्द्र जी का बाण व्यर्थ नहीं जाता था, अतः उस बाण से उन्होंने जयन्त की एक आँख फोड़ कर उसे क्षमा कर दिया।

कहु कपि केहिविधि राखउँ प्राना। तुम्हहूँ तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सोइ राती॥

केहि विधि—किस प्रकार। सीतल भई छाती—हृदय ठंडा हुआ था, हृदय को संतोष हुआ था। मोकहुँ—मेरे लिए।

"बताओ हनुमान् जी, मैं किस प्रकार जीवन धारण करूँ" तुम भी अब जाने को कह रहे हो। तुम्हे देख कर हृदय शीतल हुआ था—अब फिर मेरे लिए रात दिन वैसा ही (पहला—जैसा)

हो जाएगा (अर्थात् अब फिर कष्ट से रात दिन बीतेगा और राक्षस—राक्षसियाँ मुझे कष्ट देंगे)।"

जनकसुतहिँ समुझाइ करि, बहुबिधि धीरज दीन्ह।
चरनकमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहँ कीन्ह॥

धीरजु—धैर्य, भरोसा। गवनु—गमन। राम पहँ—राम के पास।

हनुमान् जी ने सीता जी को समझा कर बहुत तरह से धीरज बँधाया फिर उनके चरण कमलों में सिर नवा कर के रामचन्द्र जी के पास को रवाना हुए।

चलत महा धुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिँ सुनि निशि-चर-नारी॥
नाँघि सिन्धु एहि पारहिँ आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा॥
हर्षे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तब जाना॥

महाधुनि—जोर की आवाज से। स्रवहिं—गिर जाते थे। नाँघि—लंघन, लाँघ कर। एहि—इस। सबद—शब्द। नूतन—नया। जनम—जन्म।

चलते समय हनुमान् जी ने बड़े जोर से गर्जना की जिसको सुन कर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। हनुमान् जी समुद्र को लाँघ कर उसके पार पहुँच गए और अपनी किलकारी क शब्द बन्दरों को सुनाया। सब कोई हनुमान् जी को देख क प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना नया जन्म हुआ समझा। (क्योंवि सीता जी की खोज के लिए भेजते समय सुग्रीव ने सब रीछ बन्दरों से कह दिया था कि जो कोई सीता जी का समाचा लिए बिना यहाँ आएगा वह जीता नहीं बचेगा)।

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा॥
मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जनु बारी।

तन—तनु, शरीर। तेज—कान्ति। विराजा—शोभायमान था। तलफत मीन—तड़फती हुई मछली। जनु—मानो। वारि—जल।

हनुमान् जी का मुख प्रसन्न था और उनका शरीर कान्ति से चमक रहा था (इससे सबने समझ लिया कि इन्होंने) रामचन्द्र जी का कार्य पूरा कर लिया। सब कोई हनुमान् जी से मिल कर बड़े प्रसन्न हुए मानो (जल से अलग हुई) तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो।

चले हरषि रघुनायक पासा। पूछत कहत नवल इतिहासा ॥
तब मधुवन भीतर सब आये। अंगदसंमत मधुफल खाये ॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि-प्रहार हनत सब भागे ॥

नवल—नया। इतिहास—समाचार। मधुवन—राज्य के बगीचे का नाम। अंगद—वालि का पुत्र तथा राज्य का युवराज। अंगद संमत (तत्पु०)—अंगद की अनुमति या आज्ञा पाकर। मधु फल—मीठे फल। बरजन—(वर्जधातु) मना करने लगे। मुष्टिप्रहार—घूंसो की चोट। हनत—मारने पर।

फिर सब लोग आपस में (हनुमान् जी के) नए लंका-समचार को पूछते-कहते हुए रघुनाथ जी के पास को चल दिए। (मार्ग में वे) मधुवन के भीतर घुस गए और अंगद की अनुमति से वहाँ के मीठे मीठे फल खाने लगे। जब बाग के रक्षकों ने उन्हें मना किया तो उन्होंने रक्षकों को घूँसों से मारा जिससे वे सब (रक्षक) भाग गए।

जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुवराज ॥
सुनि सुग्रीव हरष कपि, करि आये प्रभुकाज ॥

जौ न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥

वन—उपवन, बाग। उजार—उद्धृत कर दिया, उजाड़ दिया। प्रभुकाज—राम जी का कार्य, अर्थात् सीता जी की खोज (तत्पु०) सुधि—खबर, समाचार।

उन सब (रक्षकों) ने जाकर (सुग्रीव के पास) पुकार की कि युवराज (अंगद) ने बाग को नष्ट कर डाला। यह सुनकर सुग्रीव को प्रसन्नता हुई (और उन्होंने समझा) कि वन्दर स्वामी रामचन्द्र जी का कार्य पूरा कर आए। (क्योंकि) यदि उन्होंने सीता जी की सुध न पाई होती तो क्या वे (यह तमाम उत्पात करके) मधुवन के फल खा सकते थे ?

एहि विधि मन विचार कर राजा। आइ गये कपि सहित समाजा॥
आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिले सबन्हि प्रति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपा भा काजु बिसेखी॥
नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥

राजा—सुग्रीव। सीसा—शीर्ष, सिर। कपीसा—वन्दरों के स्वामी (तत्पु०) सुग्रीव। पद—चरण। पददेखि—चरण देखने से। राखे—रक्षित, रक्खे, बचाए।

सुग्रीव इस प्रकार मनमें विचार कर रहे थे कि इतने में सब वन्दर अपनी मंडली सहित वहाँ आ पहुँचे। सब ने आकर सुग्रीव के पैरों में सिर झुकाया। सुग्रीव सब से बड़े प्रेम से मिले और कुशल पूँछी। (वन्दरों ने उत्तर दिया), "आपके चरणों के दर्शन से ही सब कुशल हैं। रामचन्द्र जी की कृपा से सब कार्य विशेष रूप से (अर्थात् अच्छी तरह) पूर्ण हुआ है (अथवा जिस विशेष कार्य के लिए हम लोग गए थे वह रामचन्द्र जी की कृपा से पूरा हो गया)। हे स्वामी, हनुमान् जी ने यह कार्य पूरा किया है और तमाम बंदरों के प्राण बचाए हैं।"

सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहँ चलेऊ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा। किये काजु मन हरष बिसेखा॥

बहुरि—फिर, दूसरा। तेहि—हनुमान् जी से।

यह सुनकर सुग्रीव हनुमान् जी से दुबारा मिले और सब बंदरों को लेकर रामचंद्र जी के पास चले। रामचंद्र जी ने जब बंदरों को आते हुए देखा (तो उन्होंने समझा कि) इन्होंने कार्य पूरा कर लिया और उनके मन में विशेष हर्ष हुआ।

फटिकसिला बैठे दोउ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥
प्रीति सहित सब भेँटे, रघुपति करुनापुञ्ज।
पूँछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पदकञ्ज॥

फटिकसिला—स्फटिकशिला (स्फटिक एक प्रकार का सफेद पत्थर होता है, जिसे संगमरमर कहते हैं) परे—पड़े, गिरे। करुणापुंज—करुणा के ढेर (तत्पु०), पदपंकज—चरण कमल (रूपक)।

दोनों भाई (रामचंद्र जी और लक्ष्मण जी) एक संगमरमर की शिला पर बैठे थे। सब बंदर जाकर उनके चरणों में गिर पड़े। कृपानिधि रामचंद्र जी सब से सप्रेम मिले और उन्होंने कुशल पूछी। (वानरों ने कहा), "हे नाथ, अब आप के चरण कमल देखकर सब प्रकार कुशल है।"

जामवन्त कह सुनु रघुराया। जापर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरन्तर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥
सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रयलोक उजागर॥

रघुराया—रघुराज। जापर—जिसके ऊपर। दाया—दया। निरंतर—सदा, लगातार, अटूट। सुभ—शुभ, कल्याण। ता ऊपर—उसके ऊपर। बिजई—विजयी। बिनई—विनयी।

सुजसु—सुयश, सुंदर कीर्त्ति। त्रयलोक—तीनों लोकों में, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में। उजागर—उज्जागर, जागती हुई, फैली हुई।

जाम्बवान् ने कहा, "हे रामचंद्र जी, सुनिए; हे स्वामी, जिसके ऊपर आप दया करते हैं उसके लिए सदा शुभ और कुशल है; देवता, मनुष्य और मुनि उस पर प्रसन्न रहते हैं; वही सदा विजयशील, विनयशील और गुणों का सागर है, उसकी सुकीर्त्ति तीनों लोकों में फैली रहती है—

प्रभु की कृपा भयउ सबु काजू। जनम हमार सुफल भा आजू॥
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाये। जामवन्त रघुपतिहि सुनाये॥

आजु—आज, अद्य। करनी—करणीय, काम।

"प्रभु (आप) की कृपा से सब कार्य पूरा हो गया। (जिससे) हमारा जन्म आज सफल हुआ। हे स्वामी, वायुपुत्र हनुमान् जी ने जो काम किया है उसे हजार मुख से भी वर्णन नहीं किया जा सकता।" (इतना कहकर फिर) जाम्बवान् ने रामचन्द्र जी को हनुमान् जी के सुन्दर चरित्र कह सुनाए (कि उन्होंने लंका जाकर क्या क्या किया)।

सुनत कृपानिधि मन अति भाये। पुनि हनुमान हरषि हिय लाये॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

हिय—हृदय। रच्छा—रक्षा। स्व—अपना।

(हनुमान् जी का चरित्र) सुन कर दयासागर रामचन्द्र जी के मन को बड़ा अच्छा लगा। फिर उन्होंने हर्षित होकर हनुमान् जी को हृदय से लगा लिया (और पूछा), "हे तात,

कहो सीता जी (उन राक्षसों के बीच में) किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करती हैं ?"

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज-पद-जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट ॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही । रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही ॥
नाथ जुगललोचन भरि बारी । बचन कहे कछु जनक कुमारी ॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना । दीनबन्धु प्रनतारतिहरना ॥

नाम—आप का नाम । पाहरू—प्रहरी, पहरेदार । कपाट—किवाड़ । लोचन—नेत्र । जंत्रित—ताले से जकड़े हुए । बाट—पथ या वर्त्म, मार्ग, रास्ता । जुगल—युगल, दोनों । गहेहु—पकड़ो, पकड़ना । प्रनतारतिहरन—प्रणतार्तिहरण, विनीत के दुःख को दूर करने वाले (तत्पु०) ।

नोट—पहले तीन चरणों में रूपक अलंकार, पूरे दोहे में उत्प्रेक्षा है ।

(हनुमान् जी ने उत्तर दिया)-"आप का नाम तो रात दिन (जिसका वह उच्चारण करती रहती हैं) पहरेदार है और आपका ध्यान किवाड़े हैं और अपने पैरों की ओर सदा लगे हुये उनके नेत्र ताला हैं—फिर प्राण किस मार्ग से जा सकते हैं ? (कहने का तात्पर्य यह है कि शरीररूपी मकान के द्वार में किवाड़ भी लगी हुई हैं और ताला भी लगा हुआ; बाहर पहरेदार भी खड़ा है । ऐसी दशा में उस भवन में बन्दीरूप से प्राणों को निकल जाने का मार्ग नहीं मिलता)—श्री सीताजी ने वहाँ से चलते समय मुझे (चिन्ह स्वरूप) चूड़ामणि दी है ।" रामचन्द्र जी ने हनुमान् जी से चूड़ामणि को लेकर हृदय से लगा लिया । (हनुमान् जी फिर कहने लगे)—"हे नाथ, सीता जी ने दोनों नेत्रों में जल भर कर आप के लिए कुछ वचन

कहे हैं। (उन्होंने कहा है कि) छोटे भाई लक्ष्मण सहित प्रभु रामचन्द्र जी के (मेरी ओर से) चरण पकड़ना (और कहना कि) आप दीनों के बन्धु और विनीतों के दुःख को दूर करने वाले हैं।

मन क्रम वचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर मैं जाना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥

हौं—अहम्, मैं। अवगुन—अवगुण, दोष। मोर—मेरा अपना। पयान—प्रयाण, गमन, जाना।

मेरा मन, कर्म और वचन से आपके ही चरणों में अनुराग है, फिर किस अपराध से आपने मुझे त्याग दिया? हाँ, मैं अपना एक दोष जानती हूँ कि आप से बिछुड़ते हुए मेरे प्राण नहीं निकल गए।—

नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥
बिरह-अगिनि तनु-तूल समीरा। स्वास जरइ छन माँह सरीरा॥
नयन स्रवहिं जल निजहित लागी। जरइ न पाव देह बिरहागी॥

कर—का। निसरत—निकलते समय, निकलने में। हठि—जबर्दस्ती। बाधा—रुकावट। तूल—रूई। छन—क्षण। स्रवहिं—गिराते हैं, बरसाते हैं। निजहितलागी—अपने हित के लिए। जरइ न पाव—जलने नहीं पाता। बिरहागी, बिरह-अगिनि—विरहाग्नि, विरह रूपी अग्नि (रूपक)।

"हे स्वामी, सो यह तो मेरे नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में जबर्दस्ती रुकावट डालते हैं। आप का विरह तो अग्नि है और मेरा शरीर रूई तथा साँस (जो मैं लेती हूं) वायु है। (वायु से भड़की हुई विरहाग्नि में रूई-रूपी) शरीर एक क्षण भर में जल जा सकता है, परन्तु नेत्र (आपके दर्शनों की आशा

में) अपने लाभ के लिए जल बरसा देते हैं (अर्थात् रोते रहते हैं, इस कारण) शरीर विरहाग्नि से जल नहीं पाता।'—

अलङ्कार—सांग रूपक तथा उत्प्रेक्षा का संकर।

सीता कै अति बिपति बिसाला, बिनहिं कहे भल दीनदयाला॥
निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलपसम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुजबल खलदल जीति॥

अति बिसाला—बहुत बड़ी। दीनदयाला—दीनदयालु, दीनों पर दया रखने वाले (तत्पु०)। निमिष निमिष—पल पल। कल्प—युग। बेगि—जल्दी से। आनिय—ले आइए। भुजबल—अपनी भुजाओं के बल से। खलदल—दुष्ट राक्षसों के समूह को (तत्पु०)।

(अब हनुमान् जी कहते हैं कि) "हे दीनों पर दया करने वाले प्रभु, सीता का कष्ट बहुत बड़ा है—उसका न कहना ही ठीक है। उनको एक एक पल एक एक युग के समान बीत रहा है। आप जल्दी से चल कर और अपने बाहुबल से राक्षसों के समूह को जीत कर उन्हें ले आइए।"

सुनि सीता-दुख प्रभु सुख-ऐना। भरि आये जल राजिव नैना॥
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहु बूझिय बिपति कि ताही॥

ऐन—अयन, घर, स्थान। सुख-अयन—सुखधाम (तत्पु०)। राजिवनयन—कमल के समान नेत्रों में (उपमा)। गति—पहुँच, शरण। जाहि—जिसको। सपनेहुँ—स्वप्न में भी। बूझिय—पूछ सकती है।

सीता जी के दुःख को सुन कर सुखधाम प्रभु रामचन्द्र जी के कमल से नेत्रों में जल भर आया। (और उन्होंने कहा), "मन, कर्म और वचन से जिसे मेरी ही शरण है उसे क्या स्वप्न

में भी विपत्ति पूछ सकती है ? (अर्थात् उसे स्वप्न में भी दुःख नहीं हो सकता)।"

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजनु न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥

केतिक—कितनी। आनिबी—लिवा लाई जाएँगी। सुमिरन—स्मरण, याद।

हनुमान् जीने कहा, "हे प्रभु, विपत्ति तो वही है कि जब आपका स्मरण और भजन नहीं होता। (अर्थात् आपके भजन में बाधा होना ही असली विपत्ति है, और सब विपत्तियाँ तो तुच्छ हैं)। स्वामी, राक्षसों की कितनी सी बात है? शत्रु को जीत कर जानकी जी लिवा लाई जाएँगी।"

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥
प्रति-उपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

उपकारी—भलाई करने वाला। तनुधारी—शरीरवान्; शरीर धारण करने वाला। प्रति-उपकार—उपकार का बदला।

श्री रामचन्द्र जी बोले, "हे कपि, सुनो, तुम्हारे समान मेरा उपकारी कोई शरीरवान् देवता, मनुष्य या मुनि नहीं है। तुम्हारे उपकार का मैं क्या बदला दे सकता हूँ ? (तुम्हारे उपकार से मैं इतना दबा हुआ हूँ कि) मेरा मन तुम्हारे सम्मुख नहीं हो सकता।"

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ कर बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

उरिन—उऋण, ऋणमुक्त, जिसने कर्ज चुका दिया हो। चितव—देखते थे। पुलक—रोमांच। गात—गात्र, शरीर। सुरत्राता—देवताओं के त्राता या रक्षक (तत्पु०)।

"हे पुत्र, मैंने मन में सोच कर देख लिया कि मैं तुम्हारे (उपकार के) ऋण से नहीं छूट सकता।" देवताओं के रक्षक रामचन्द्र जी बार बार हनुमान् जी की ओर देखते थे, उनके नेत्रों से जल बह रहा था और शरीर में रोमाञ्च हो रहा था।

सुनि प्रभु-बचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त॥

प्रभु बचन (तत्पु०)। हरषि—हर्षित होकर। त्राहि—रक्षा करो।

भगवान् के वचन सुन कर और उनके मुख की ओर देख कर हनुमान् जी शरीर से पुलकित हो उठे और प्रेम में व्याकुल हो कर रामचन्द्र जी के चरणों पर गिर पड़े (तथा कहने लगे)। "हे भगवन्, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।"

बार बार प्रभु चहहिं उठावा। प्रेममगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु-कर-पङ्कज कपि कै सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

प्रभु कर पंकज—रामचन्द्र जी के हाथ रूपी कमल (तत्पु०। रूपक)। उठब—उठना। दसा—दशा। मगन—मग्न, डूबे हुए, प्रेममग्न। गौरीसा—गौरीश, गौरी के स्वामी (तत्पु०), महादेव जी।

रामचन्द्र जी बार बार हनुमान् जी को उठाना चाहते हैं परन्तु प्रेम-मग्न हनुमान् जी को उठना अच्छा नहीं लगता। भगवान् हनुमान् जी के सिर पर हाथ रक्खे हुए हैं। उस दशा को याद करके महादेव जी भी प्रेम में मग्न हो गये।

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुन्दर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥

शिवजी अपने (प्रेममग्न) हृदय को सावधान करके फिर इस सुन्दर कथा को (पार्वती जी से) कहने लगे। रामचन्द्रजी ने हनुमान् जी को उठा कर हृदय से लगा लिया और उनका हाथ पकड़ कर उनको अपने पास बैठाया।

कहु कपि रावन-पालित लंका। केहि बिधि दहेहु दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत-अभिमाना॥

रावन पालित—रावण से पाली जाती हुई (तत्पु०)। दहेहु—जलाया। बंक—टेढ़ा अर्थात् दुर्गम। बिगत-अभिमाना—अभिमान रहित (तत्पु०)।

(रामचन्द्र जी ने पूछा), "हे हनुमान् जी कहो, रावण द्वारा पाली जाती हुई लङ्का के टेढ़े दुर्ग को तुमने किस प्रकार जलाया ?" हनुमान् जी ने प्रभु को प्रसन्न जान कर ये अभिमान-रहित वचन कहे—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाँघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर-गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरी प्रभुताई॥

मनुसाई—मनुष्यता, पुरुषार्थ। नाघि—कूद कर। हाटक—सुवर्ण। हाटकपुर—सोने का बना हुआ नगर (मध्यमपद-लोपी कर्मधारय), लंका। गन—गण, समूह। बधि—मार कर। बिपिन—वन, अशोक वाटिका। तव—आपका।

"बन्दर का बड़ा पराक्रम तो यही है कि एक डाल से दूसरी डाल पर कूद जाए। मैंने समुद्र को कूद कर लंका को जला दिया और राक्षसों के समूह को मार कर वन को उजाड़ डाला। यह सब आप ही का प्रताप था।। इसमें कोई मेरी बड़ाई नहीं है।—

ताकहुँ कछु प्रभु अगम नहिं, जापर तुम्ह अनुकूल ।
तव प्रताप बड़वानलहि, जारि सकइ खलु तूल ॥

ताकहुँ—उसको। अगम—अगम्य, असम्भव, कठिन। बड़वानल—वह अग्नि जो समुद्र के भीतर रहती है। जारि सकइ—जला सकती है। खलु—खल, तुच्छ, खलु, निश्चय ही। तूल—रूई।

"हे प्रभु, उस मनुष्य के लिए कोई बात असम्भव नहीं है जिसके ऊपर आप की कृपा होती है।" आप के प्रताप से तुच्छ रूई भी वाड़वाग्नि को जला सकती है। (अथवा रूई भी निश्चय ही वाड़वाग्नि को जला सकी है)।

नाथ भगति अति सुख-दायिनी। देहु कृपा करि अनपायिनी ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि-बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥
उमा राम-सुभाव जेहि जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति-चरन-भगति सोइ पावा ॥

सुखदायिनी—सुख को देने वाली (तत्पु०)। अनपायिनी—कभी नष्ट न होने वाली, नित्य रहने वाली। सरल—सीधी, कपट रहित। एवमस्तु—ऐसा ही हो। आना—अन्य, दूसरा। जासु—जिसके। उर—हृदय। रघुपति चरन भगति—रामचन्द्र जी के चरणों की भक्ति (तत्पु०)।

"हे नाथ, मुझे कृपा करके अपनी नित्य रहने वाली तथा परम सुख की देने वाली भक्ति दीजिए।" (शिवजी पार्वती जी से कहते हैं कि), "हे भवानी हनुमान् जी की ऐसी निश्छल वाणी को सुन कर भगवान ने कहा—'एवमस्तु।' हे उमा, जो मनुष्य रामचन्द्र जी के (कोमल) स्वभाव को जानता है उसके लिए उनका भजन छोड़ कर दूसरा कोई भाव ही नहीं

है (अर्थात् वह सदा राम-भजन में ही मग्न रहता है। रामचन्द्र जी तथा हनुमान जी के इस) सम्वाद को जो मनुष्य अपने हृदय में रखता है वह रामचंद्र जी के चरणों की भक्ति को प्राप्त कर लेता है।"

सुनि प्रभु-बचन कहहिं कपि-बृन्दा। जय जय जय कृपालु सुख कन्दा॥
तब रघुपति कपिपतिहिं बुलावा। कहा चलइ कर करहु बनावा॥

कपिबृंद—बन्दरों का समूह (तत्पु०)। सुखकंद—सुख की जड़ (तत्पु०), सुख के उत्पत्तिस्थान। कपिपतिहिं—सुग्रीव को। चलइ कर—चलने का। बनावा—तैयारी।

रामचंद्र जी के वचन सुन कर वानरों का समूह कहने लगा, "हे सुखमूल, कृपालु भगवन् आप की जय हो, जय हो।" तदनन्तर रामचंद्र जी ने सुग्रीव को बुलाया और उससे कहा।, (अब लङ्का पर चढ़ाई के लिए) चलने की तैयारी करो।—

अब बिलम्बु केहि कारन कीजै। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजै॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥

बिलम्ब—देर। आयसु—आज्ञा। सुमन—पुष्प। नभ—आकाश।

"अब किस कारण से देर की जाए। तुरंत ही बंदरों को आज्ञा दे दो।" यह कौतुक देख कर देवताओं ने (जो आकाश से यह सब देख रहे थे) बहुत सी पुष्प वर्षा की और वे प्रसन्न होकर आकाश से अपने अपने स्थानों को चले।

कपिपति बेगि बोलाये, आये जूथप जूथ।
नाना-बरन अतुलबल, बानर-भालु-बरूथ॥

जूथ—यूथ, झुंड, गिरोह। यूथप—गिरोह के सरदार, सेनापति। नाना बरन—नाना वर्ण, तरह तरह के रङ्ग हैं जिनके

(बहु०) अनेक प्रकार के। अतुलबल—अद्वितीय बल वाले। (बहु०)। भालु—रीछ। बरूथ—समूह।

(रामचंद्र जी की आज्ञा से) सुग्रीव ने जल्दी से वानरों आदि को बुलाया। (उनके बुलाने पर) अनेक रङ्ग वाले, परम बलशाली बंदरों तथा रीछों के समूह और उनके सरदार वहाँ आ पहुँचे।

प्रभु-पद-पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि-सैना। चितइ कृपा करि राजिवनैना॥

प्रभुपदपङ्कज—(तत्पु०। रूपक) चितइ—देखते हैं। राजिवनैना—कमल नेत्र (वाचक धर्मलुप्तोपमा)।

वे बलशाली रीछ और बंदर रामचंद्र जी के चरण कमलों में सिर झुकाने और गर्जना करने लगे। रामचंद्र जी ने कृपा करके तमाम वानर सेना को अपने कमल के समान नेत्रों से देखा।

राम-कृपा-बल पाइ कपिन्दा। भये पच्छजुत मनहुँ गिरिन्दा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भये सुन्दर सुभ नाना॥

रामकृपाबल- (तत्पु०)। कपिन्दा—कपीन्द्र, बंदरों के सरदार। पच्छजुत—पक्षयुत, पंख वाले। गिरिन्दा—गिरीन्द्र, पर्वतों के सरदार अर्थात् बड़े पर्वत। पयान—प्रयाण, रवानगी। सगुन—शकुन। सुभ—शुभ।

वे विशाल बंदर रामचंद्र जी की कृपा का बल पाकर ऐसे हो गए मानों पङ्खवाले बड़े बड़े पर्वत हों। तब रामचन्द्र जी प्रसन्न होकर (लङ्का के लिए) रवाना हुए। उस समय बहुत से अच्छे और मङ्गल सूचक शकुन हुए।

अलङ्कार—पहली पंक्ति में उत्प्रेक्षा।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु-पयान जाना वैदेही। फरकि बाम अंग जनु कहि देही॥

कीती—कीर्ति, यश। नीति—लोकमर्यादा। बाम—बाँया। जनु—मानो।

जिस भगवान् के यश (अर्थात् चरित्र या नाम के जप) में ही तमाम मंगल हैं उसकी यात्रा के समय शकुन हों, यह केवल मर्यादा की बात है। (अर्थात् भगवान् का नाम लेने से स्वयं सब प्रकार का मंगल होता है, दूसरे लोग उससे तर जाते हैं; फिर उसे अपने कार्य में शुभसूचक शकुनों की क्या आवश्यकता है। परन्तु भगवान् लीला कर रहे थे, अतः लोकव्यवहार की मर्यादा बनी रहे इसीलिए ये शकुन हुए)। (उधर लंका में) सीता जी को रामचन्द्र जी के चलने का हाल मालूम हो गया। उनके बाएँ अङ्गों ने फड़क कर मानों उनसे यह बात कह दी हो।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई॥
चला कटकु को बरनइ पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥
नख-आयुध, गिरि-पादप-धारी। चले गगन महि इच्छा चारी॥
केहरिनाद भालु-कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

कटक—सेना। कोइ बरनइ पारा—कौन वर्णन कर सकता है। नख-आयुध—नाख़ून ही हैं शस्त्र जिनके (बहुव्रीहि)। गिरिपादपधारी—पर्वतों और वृक्षों को धारण करने वाले (तत्पु०)। गगन—आकाश। मही—पृथ्वी। इच्छाचारी—इच्छा से (इच्छानुकूल) चलने वाले (तत्पु०)। केहरिनाद—सिंह का सा गर्जन। दिग्गज—दिशाओं के हाथी। (हिंदुओं का ऐसा विश्वास है कि सब दिशाओं में अलग अलग हाथी स्थित हैं,

जो पृथ्वी को धारण किए हुए हैं)। चिक्करहीं—चिंघाड़ मारते हैं।

उस समय सीताजी को जैसे जैसे शकुन हो रहे थे वैसे ही वैसे रावण को अशकुन होने लगे। रामचंद्र जी की सेना चली। उसका कौन वर्णन कर सकता है? असंख्य बंदर और रीछ गरज रहे थे। अपने नखरूपी अस्त्रों से युक्त वे पर्वतों और वृक्षों को ले लेकर अपनी अपनी इच्छानुसार आकाश में और पृथ्वी पर चलने लगे। रीछ और बंदर सिंहों के समान गर्जना कर रहे थे। (उनके प्रस्थान और सिंहनाद से) दिशाओं के हाथी डग-मगाने और चिंघाड़ने लगे।

> चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
> मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे॥
> कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
> जय राम प्रबल-प्रताप कोसलनाथ गुन-गन गावहीं॥

डोल—डोलती थी, हिलती थी। लोल—चलायमान, चञ्चल। सागर खरभर—समुद्रों में खलबलाहट होने लगी। दिनकर—दिन को करने वाला (तत्पु०), सूर्य। सोम—चंद्रमा। नाग, किन्नर—देवजातियाँ। टरे—दूर हुए। मर्कट—बंदर। भट—योद्धा। प्रबलप्रताप—प्रबल है प्रताप जिनका (बहु०)। कोसलनाथ—कोशल अर्थात् अयोध्या के स्वामी रामचंद्र जी (तत्पु०)।

(उस सेना के प्रस्थान के समय) दिशाओं के हाथी चिंघा-ड़ने लगे, पृथ्वी हिलने लगी, पहाड़ चलायमान हो गए और समुद्रों में खलबली पड़ गई। सूर्य, चन्द्र, देवता, मुनि, नागों और किन्नरों के मन में प्रसन्नता हुई (कि अब हमारे) दुःख

दूर हुए। वानरगण भयंकर रूप से किटकिटाते हैं और योद्धागण करोड़ों की संख्या में इधर-उधर दौड़ रहे हैं। सब रामचन्द्र जी की गुणावली गाते हैं और कहते हैं, "अयोध्या के स्वामी परम प्रतापी रामचन्द्र जी की जय हो।"

> सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
> गहि दसन पुनि पुनि कमठ-पृष्ट कठोर सो किमिसोहई॥
> रघुबीर-रुचिर-पयान-प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
> जनु कमठ-खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥

अहिपति—सर्पों के स्वामी, शेषनाग। मोहई—मोह में पड़ जाते हैं, मूर्छित होते हैं। दसन—दशन, दाँत। कमठ—कछुआ। कमठ पृष्ठ—कछुए की पीठ (तत्पु०। शेषनाग भी इस पृथ्वी को धारण करने वालों में हैं जो कछुए की पीठ पर बैठे रहते हैं)। किमि—किस प्रकार। प्रस्थिति—प्रस्थान, तैयारी, अथवा वृत्तान्त अवस्था। रघुवीर...प्रस्थिति—(तत्पु०)। अविचल—दृढ़, अमिट। खर्पर—खोपड़ी, यहाँ पीठ।

उस सेना के (संचालन के) भार को उदार शेषनाग सहन नहीं कर पाते और बार बार मोह में पड़ जाते हैं (कि अब क्या करें; अथवा उस सेना के बोझ से बार बार मूर्छित हो जाते हैं) और बार बार (अपने को सँभालने के लिए) कछुए की कठोर पीठ को अपने दाँतों से पकड़ते हैं। उनकी यह दशा कैसी शोभायमान होती है मानो रामचंद्र के प्रयाण के मनोहर, परम सुहावने और पवित्र वृत्तान्त को जानकर वह उसे कछुए की (कठोर) पीठ पर अमिट करके लिखते हों।

> एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर-तीर।
> जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर॥

सागरतीर—समुद्र के किनारे (तत्पु०) पर।

इस प्रकार कृपानिधि रामचन्द्र जी (रवाना होकर) समुद्र के किनारे जाकर ठहरे, और असंख्य वीर बन्दर और रीछ जहाँ-तहाँ फल खाने लगे।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर-कुल केर उबारा॥

उहाँ—वहाँ; लंका में। ससंका—भयभीत। केर—का उबारा—उद्धार

उधर, जब से हनुमान् जी लंका जला कर गए तब से राक्षस भयभीत रहने लगे और अपने अपने घरों में विचार करते थे कि अब राक्षस-कुलका उद्धार नहीं।

जासु दूत-बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुर-जन-बानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी॥

कवन—कौन, क्या। दूतिन्ह सन—दूतियों से। पुरजनबानी—नगर के लोगों की बात चीत (तत्पु०)। अकुलानी—व्याकुल हुई।

(राक्षस लोग सोचते थे कि) जिसके दूत का बल ऐसा है कि कहा नहीं जा सकता उसके स्वयं आने पर नगर की क्या कुशल रह सकती है? नगर वासियों की ऐसी बातचीत को दूतियों के द्वारा सुन कर मन्दोदरी बहुत व्याकुल हुई।

रहसि जोरि कर पति-पद लागी। बोली बचन नीति-रस-पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू॥

रहसि—एकान्त में। जोरि कर—हाथ जोड़ कर। नीतिरस-पागी—नीति और स्नेह (द्वन्द) से पगे हुए (तत्पु०) कंत—प्यारे,

स्वामी । करप—कर्ष, खिंचाव, वैर । परिहरहु—छोड़ दो। हिय—हृदय ।

(मन्दोदरी) एकान्त में अपने पति के पैरों में पड़ कर और हाथ जोड़ कर नीति तथा स्नेह से सने हुए वचन बोली कि, "हे स्वामी, भगवान् के साथ खींचातानी को छोड़ दो और मेरे इस हितकारी कथन को हृदय में धारण करो।"

समुझत जासु दूत कर करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निजसचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

समुझत—विचार करने से। करनी—करणीय, कर्म। स्रवहिं—गिर जाते हैं। घरनी—गृहणी, स्त्री। पठवहु—भेज दो।

"जिसके दूत के कर्म का विचार करने से राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं उसकी पत्नी को, हे स्वामी, जो तुम अपना भला चाहते हो तो अपने मंत्री को बुला कर (उसके पास) भेज दो":—

तव कुल-कमल-विपिन-दुख-दायी। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हे॥

विपिन—वन। कुल...दायी—कुल रूपी कमलवन को दुख देने वाली (तत्पु०)। सीतनिसा—शीत निशा, जाड़े की रात, पालेवाली रात। सीता सीता (यमकानुप्रास)। सम—समान। संभु—शम्भु, शिव जी। अज—ब्रह्मा।

"तुम्हारे कुलरूपी कमलवन को दुःख देने वाली यह सीता जाड़ों की रात (जिसमें पाला गिरने से पेड़-पौधे नष्ट हो जाते हैं) के समान आई है। हे नाथ, सीता को लौटाए बिना, शिव और ब्रह्मा के किए भी तुम्हारा उपकार नहीं हो सकता।—"

राम बान अहिगनसरिस, निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतन करहु तजि टेक ॥

अहिगन—सर्पों का समूह (तत्पु०)। सरिस सदृश, समान। भेक—मेंढक। ग्रसत—निगलता है। जतन—यत्न, उपाय। टेक—ज़िद।

"रामचंद्र जी के बाण सर्पों के समान हैं और निशाचरों के समूह मेंढकों के समान। जब तक (ये बाणरूपी सर्प राक्षसरूपी मेंढक को) नहीं खाते हैं तब तक, अपनी ज़िद छोड़कर, (अपनी रक्षा का) उपाय कर लो।"

अलङ्कार—उपमा।

स्रवन सुनी सठ ताकर बानी। बिहँसा जगत-विदित अभिमानी॥
सभय सुभाव नारि कर साँचा। मङ्गल महुँ भय मन अति काँचा॥

जगतविदित—संसार भर में प्रसिद्ध (तत्पु०)। सुभाव—स्वभाव। साँचा—सत्य। काँचा—कच्चा।

उसकी (मंदोदरी की) बातों को कानों से सुनकर संसार-प्रसिद्ध अभिमानी रावण हँसा (और बोला), "यह सत्य ही है कि स्त्रियों का स्वभाव डरपोक होता है और उन्हें मंगल की बात में भी भय मालूम होता है। उनका मन बड़ा कच्चा होता है।"—

जौं आवइ मरकट-कटकाई। जियहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ हाँसा॥

जो—यदि। लोकप—लोकपाल। त्रासा—भय से। बड़-हाँसा—बड़ी हँसी की बात है।

"यदि बंदरों की सेना यहाँ आ जाएगी तो बेचारे राक्षस बंदरों को खा खा कर जी जाएँगे। (अतः यह तो हर्ष की बात है कि वानरगण यहाँ आ रहे हैं, इसमें डरना नहीं चाहिए)। बड़ी

हँसी की बात है कि जिसके भय से लोकपाल तक काँपते हैं उसकी स्त्री ऐसी डरपोक हो।"

अस कहि बिहँसि ताहि उरलाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई।
मन्दोदरी हृदय करि चिन्ता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

ममता—अहङ्कार। विधि—ब्रह्मा। विपरीत—प्रतिकूल, विरुद्ध।

ऐसा कह कर रावण ने मंदोदरी को हृदय से लगा लिया और बड़े अहङ्कार से अपनी सभा को गया। (वहाँ) मंदोदरी चिन्ता करने लगी कि पति के ऊपर विधाता प्रतिकूल हुआ है।

बैठेउ सभा खबरि अस पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब स्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

मत—राय, सलाह। मष्टि करि रहहू—चुप मार कर बैठे रहो। सुरासुर—सुर और असुर (द्वन्द)। स्रम—श्रम। केहि लेखे माहीं—किस गिनती में हैं?

रावण अपनी सभा में जाकर बैठा। वहाँ उसे खबर मिली कि वानरों की तमाम सेना समुद्र के पार आ गई है। वह अपने मंत्रियों से पूछने लगा कि, "उचित सलाह दो"। उन सब ने हँसकर कहा कि, "चुप मार कर बैठे रहिए (अर्थात् निश्चिन्त रहिए, कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं है क्योंकि) जब आपने देवताओं और राक्षसों की विजय की थी तभी कोई परिश्रम नहीं पड़ा था, फिर मनुष्यों और बंदरों की तो गिनती ही क्या है!"

सचिव बैद गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगि ही नास॥

बंद—बंश। आस—आशा। तन—तनु, शरीर। प्रिय—खुशामदी।

(तुलसीदासजी कहते हैं कि) मंत्री, वैद्य और गुरु भय के कारण अथवा आशा से यदि (सत्य बात न कह कर मन को अच्छी लगने वाली) खुशामद की बात कहते हैं तो राज्य, शरीर और धर्म, इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है। (मंत्री यदि उचित सलाह नहीं देता तो राज्य नहीं रह सकता, वैद्य यदि रोगी से सच्ची बात नहीं कहता तो रोगी के शरीर का नाश होता है और गुरु यदि शिष्य की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाता है तो धर्म का रहना असम्भव है)।

> सोइ रावन कहुं बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
> अवसर जानि विभीषनु आवा। भ्राता-चरन सीस तेहि नावा॥

सोइ—वही बात (जो दोहे में कही है)। सहाई—सहाय, सहायक। अस्तुति—स्तुति, प्रशंसा।

वही बात अब रावण को सहायक हुई—(उसके सचिव) सुना सुनाकर उसकी प्रशंसा करने लगे (और किसी ने सच्ची सलाह नहीं दी। इसी समय) अवसर देखकर विभीषन रावण के सामने आया और उसने भाई के चरणों में सिर नवाया।

> पुनि सिरु नाइ बैठि निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
> जौ कृपालु पूछेहु मोहि बाता। मति-अनुरूप कहउँ हित ताता॥

पुनि—पुनः, फिर, दोबारा। आसन—स्थान, बैठने की जगह। अनुसासन—अनुशासन, आज्ञा।

दोबारा सिर झुकाकर विभीषण अपनी जगह पर बैठ गया और रावण की आज्ञा पाकर बोला, "हे कृपालु, जो आप मुझसे

सलाह पूछते हैं तो, तात, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार भले की बात कहता हूं।"

जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना॥
सो परनारि-लिलारु गोसाईं। तजइ चौथ के चन्द कि नाईं॥

आपन—अपना। लिलारु—ललाट, मस्तक। चौथके चंद—भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी का चन्द्रमा। नाईं—तरह।

"जो मनुष्य अपना कल्याण, सुयश, सुबुद्धि, शुभ गति तथा तरह तरह के सुख चाहता है उसे, हे स्वामी, परस्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की भाँति छोड़ देना चाहिए।"—

नोट:—चौथ का चाँद:—हिन्दुओं में ऐसा विश्वास है कि भाद्रशुक्ल के चौथ के चन्द्रमा को देख लेने से चोरी अथवा और किसी प्रकार का कलंक लगता है। इसके सम्बंध में स्यमंतक मणि की कथा स्मरणीय है। स्यमन्तक नाम की अद्भुत तेजोमयी मणि को सत्राजित् ने सूर्य से प्राप्त किया था। सत्राजित् का भाई प्रसेन एक बार उस मणि को धारण करके एक जङ्गल में गया जहाँ एक शेर उसे मार कर मणि को अपने साथ एक गुफ़ा में ले गया। वहाँ जाम्बवान् नामक रीछों के सरदार ने उस शेर का बध कर वह मणि अपनी कन्या के खेलने के लिए ले ली। उधर सब को यह संदेह हुआ कि श्री कृष्ण ने प्रसेन की हत्या करके मणि चुरा ली है। इस संदेह का कारण यह हुआ कि कृष्ण जी ने चौथ का चांद देख लिया था। तदनन्तर कृष्ण जी ने जाम्बवान् को हरा कर वह मणि उससे ले ली और उसे उसके अधिकारी सत्राजित् को दे दिया। इस प्रकार वह उस कलंक से मुक्त हुए।

चौदह भुवन एक-पति होई। भूत-द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

एकपति—अकेला स्वामी। भूत—प्राणी। भूतद्रोह—प्राणियों से द्रोह (तत्पु०) करके। तिष्ठइ—तिष्ठति (संस्कृत 'स्था' धातु का वर्तमानकाल का रूप), ठहरता है। नागर—चतुर। अलप—अल्प, थोड़ा।

"चाहे कोई मनुष्य चौदहों लोकों का अकेला स्वामी ही हो पर वह भी प्राणियों से वैर करके (इस संसार में) ठहर नहीं सकता। जो मनुष्य गुणों का सागर और बड़ा चतुर है उसे भी थोड़े से लोभ के होने के कारण कोई भला नहीं कहता।"—

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु भजहिं जेहि संत॥

पंथ—मार्ग। परिहरि—छोड़ कर। जेहि—जिसको।

"हे स्वामी, काम, क्रोध, मद और लोभ, ये सब नरक के रास्ते हैं (अर्थात् इनके वशीभूत होकर मनुष्य नरक में पहुँचता है। अतः तुम) इन सब को छोड़ कर रामचन्द्र जी का भजन करो जिनको सज्जन लोग भजते हैं।"

तात रामु नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहुँ कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनन्ता॥
गो-द्विज-धेनु-देव-हितकारी। कृपासिन्धु मानुस-तन-धारी॥
जन-रञ्जन भञ्जन-खल-व्राता। वेद-धर्म-रच्छक सुनु भ्राता॥

भुवनेश्वर—विश्व भर के स्वामी, सब भुवनों के ईश्वर (तत्पु०)। कर—का। अनामय—आमय से रहित (बहु०), निर्विकार। अज—जन्म रहित, जो कभी पैदा न हुआ हो। व्यापक—सर्वत्र रहने वाला, सर्वव्यापी। अजित—जिसे कोई न जीत

सका हो। अनादि —जिसका आदि या आरम्भ न हो (बहु०), जो हमेशा से हो। अनन्त—जिसका कभी अन्त न हो, मृत्युरहित। गोद्विजधेनुदेव हितकारी—पृथ्वी, ब्राह्मण, गऊ और देवताओं (द्वन्द) का हित करने वाला (तत्पु०)। मानुपतनुधारी—मनुष्य शरीर (कर्मधारय) धारण करने वाले (तत्पु०)। जनरंजन—सेवकों कं सुख देने वाले (तत्पु०)। खलब्राता-भंजन—दुष्टों के समूह को नष्ट करने वाले (तत्पु०)। रच्छक—रक्षक।

"हे तात, रामचन्द्रजी मनुष्य या (सामान्य) राजा नहीं हैं, वह तो चौदह लोकों के स्वामी और मृत्यु की भी मृत्यु हैं। वह साक्षात् परब्रह्म हैं, निर्विकार हैं, जन्मरहित भगवान् हैं; व्यापक, अजित, अनादि और अनन्त हैं। कृपा के सागर भगवान् रामचन्द्र जी पृथ्वी, ब्राह्मण, गऊ, और देवताओं के हितकारी हैं (इसलिए कृपा करके) उन्होंने मनुष्यशरीर धारण किया है। हे भाई, सुनो, वह अपने सेवकों को प्रसन्न करने वाले और दुष्टों का नाश करनेवाले तथा वेद और धर्म के रक्षक हैं।—

ताहि बयरु तजि नाइय माथा। प्रनतारतिभञ्जन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥
सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्वद्रोहकृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रयताप-नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिय रावन॥

बयरु—वैर, शत्रुता। नाइय—नवाओ, झुकाओ। प्रनतारति भंजन—प्रणतार्तिभञ्जन, प्रणतों (वनीतों) की आर्ति (कष्ट) के भंजन (दूर करने वाले। तत्पु०)। बिनु हेतु—बिना कारण के सनेही—स्नेही, सरन—शरण। ताहु—उसको भी। बिस्व द्रोहकृत—विश्व के द्रोह से उत्पन्न हुआ। (तत्पु०)। अघ—पाप त्रयतापनसावन—तीनों तापों (अर्थात् शारीरिक, मानसिक औ

दैविक कष्टों) का नाश करने वाला (तत्पु०)। त्रयताप (द्विगु)। प्रगट—प्रकट। जिय—जीव, हृदय में।

"उनके साथ वैर छोड़ कर उन्हें अपना माथा नवाओ। रघुनाथ जी विनीत मनुष्य के दुःख को दूर करने वाले हैं। हे स्वामी, प्रभु रामचन्द्र जी को सीता जी लौटा दो। रामचन्द्र जी का भजन करो जो बिना कारण प्रेम करने वाले हैं। उनकी शरण में जाने पर वह उस व्यक्ति तक को नहीं त्यागते जिसे तमाम विश्व से शत्रुता करने का अपराध लग चुका है। हे रावण, हृदय में समझ रक्खो कि (रामचन्द्र जी के रूप में) वही प्रभु (पृथ्वी पर) प्रकट हुए हैं जिनका नाम लेने से तीनों प्रकार के दुःख नष्ट हो जाते हैं।"—

बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीश॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यह बात॥
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसर तात॥

कोसलाधीस—कोशल के अधीश रामचन्द्र जी (तत्पु०)। सिष्य—शिष्य। पठई—भेजी। सन—से।

"हे रावण, मैं बार बार तुम्हारे चरणों में पड़ता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मद को छोड़ कर कोशलाधीश रामचन्द्र जी का भजन करो। पुलस्त्य ऋषि ने यह बात अपने शिष्य के द्वारा कहला कर भेजी है, सो मैंने, हे तात, अच्छा मौका पाकर तुरन्त (अभी) अपने प्रभु (अर्थात् तुम) से कह दी।"

माल्यवन्त अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति-विभूषन। सो उर धरहु जो कहत विभीषन॥

अति सयाना—बड़ा चतुर। अनुज—छोटा भाई। नीति विभूषन—नीति का विभूषण (तत्पु०। रूपक), अथवा नीति है भूषण जिसका (बहु०), नीति का पंडित।

माल्यवान् नाम के चतुर सचिव ने विभीषण के वचन सुनकर बड़ा सुख माना और रावण से कहा, "हे तात, तुम्हारे भाई नीति को जानने वाले हैं; जो विभीषण कहते हैं उसे हृदय में धारण कीजिए।"

रिपु-उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहां हइ कोऊ॥
माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषन पुनि कर जोरी॥

उतकरप—उत्कर्ष, बड़ाई।

(रावण क्रोध में भर गया और बोला), "ये दोनों दुष्ट शत्रु की बड़ाई की बात कहते हैं। कोई यहाँ है ? इनको यहाँ से दूर क्यों नहीं कर देते।" (यह सुनकर) माल्यवान् फिर अपने घर चला गया और विभीषण पुनः हाथ जोड़ कर कहने लगा।

सुमति कुमति सब के उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहां कुमति तहँ बिपति निदाना॥

सुमति, कुमति—सुबुद्धि, दुर्बुद्धि। निगम—वेद। अस—ऐसा। निदान—परिणाम, अन्त।

"हे नाथ, वेद पुराण ऐसा कहते हैं कि सद्‌बुद्धि और दुर्बुद्धि दोनों सब के हृदय में रहती हैं। (परन्तु) जहाँ सुमति (की प्रधानता) होती है वहाँ तरह तरह की सुख-सम्पत्ति रहती है और जहाँ कुमति (की प्रधानता) होती है, वहाँ दुःख ही उसका परिणाम होता है।"—

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

विपरीता—उलटी । प्रीता—मित्र । केरी—की । घनेरी—अधिक । हित—भलाई । अनहित—बुराई ।

"तुम्हारे हृदय में उलटी दुर्बुद्धि बसी हुई है जिससे तुम भलाई की बात को बुरी (अथवा मित्र को शत्रु) और शत्रु को मित्र समझते हो, और जो सीता राक्षस कुल की कालरात्रि के समान है उसी पर तुम्हारी बहुत अधिक प्रीति है ।

तात चरन गहि माँगउँ, राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ॥

दुलार—स्नेह, ममता, अनुरोध ।

"हे बन्धु, मैं पैर पकड़ कर तुमसे माँगता हूँ—मेरे अनुरोध को रख लो । सीता जी को राम को दे दो । इसमें तुम्हारी बुराई नहीं होगी ।"

बुध-पुरान-श्रुति-सम्मत बानी । कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥
जियसि सदा सठ मोर जियावा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥

बुधपुरानश्रुतिसम्मत—विद्वानों पुराणों और वेदों (द्वन्द्व) से मानी हुई (तत्पु०) । बखानी—व्याख्या करके, समझा कर । रिसाई—क्रोध करके । पच्छ—पक्ष, तरफ़दारी । भावा—पसन्द आता है, अच्छा लगता है ।

इस प्रकार विभीषण ने पंडितों, पुराणों तथा वेदों के द्वारा उचित मानी हुई नीति की बात को समझा कर कहा । परन्तु रावण उसको सुनते ही क्रोध करके उठा और बोला, "रे दुष्ट, तेरी मृत्यु अब निकट आ गई है । हमेशा मेरे जिलाए (अर्थात् मेरे ही आश्रय से) तू जीता है (परन्तु इस समय) तुझे शत्रु की तरफ़दारी अच्छी लगती है ।

कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जेहि जीता मैं नाहीं ॥
मम पुर बसि तपसिन पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरनप्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥

तपसिन्—तपस्विन। चरण प्रहार—पैर का आघात (तत्पु०) गहे—पकड़े।

"अरे दुष्ट, कह न, संसार में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीता न हो? मेरे नगर में रह कर तपस्वियों से प्रीति रखता है। दुष्ट, जा उन्हीं से मिल; उन्हीं को नीति सिखा।" ऐसा कह कर रावण ने विभीषण पर पैर का आघात किया (लात मारी, परन्तु) विभीषण बार बार (नम्रता से) उसके पैरों को पकड़ता जाता था।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई ॥
तुम पितु सरिस भलेहि मोहि मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा ॥

कइ—की। इहइ—यही। मन्द—बुराई। सरिस—सदृश, समान।

(इस प्रसंग को देखकर शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि) "हे उमा, सज्जन का बड़प्पन यही है कि (किसी के उसके साथ) बुराई करने पर भी (वह उसके साथ) भलाई करता है।" (विभीषण ने रावण के लात मारने पर कहा कि), "तुम (मेरे बड़े भाई हो, इसलिए) पिता के समान हो। तुमने मुझे मारा सो उचित ही है। (मैं फिर भी कहता हूँ कि), "हे नाथ रामचंद्र जी का भजन करने से तुम्हारा भला होगा।"

सचिव संग लेइ नभपथ गयऊ। सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ ॥

रामु सत्य-संकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर-सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥

नभपथ—आकाश का मार्ग (तत्पु०)। अस कहत भयऊ—ऐसा कहने लगा। सत्यसंकल्प—सत्य ही जिनका संकल्प है (बहु०)। सत्यग्रहित, सत्य का पक्ष लेने वाले। कालबस—काल के वश में (तत्पु०)। तोरि—तेरी। जनि—नहीं, मत। खोरि—बुराई, दोष।

(तदनन्तर विभीषण अपने) सचिवों को साथ लेकर आकाश-मार्ग में चला गया और वहां से सब को सुना कर इस प्रकार कहने लगा, "हे रावण, तेरी सभा मृत्यु के वश में हो रही है। रामचन्द्र जी सत्य का पक्ष लेने वाले हैं, मैं तो अब उन्हीं की शरण में जाता हूँ। मुझे अब दोष न देना"

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयुहीन भये सब तबहीं॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥
रावन जबहिं बिभीषनु त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥

आयु हीन भये—आयु नष्ट हो गई अर्थात् मृत्यु निकट आ गई। सब—सब राक्षस। अवज्ञा—निरादर। अखिल कल्यान कै—सब प्रकार के कल्याण की। कर हानी—हानि करता है, नष्ट कर देता है। बिभव बिनु—विभव हीन, ऐश्वर्य हीन।

जिस समय विभीषण इस प्रकार कह कर वहाँ से चला तभी तमाम राक्षसों की आयु नष्ट हो गई। (शिव जी कहते हैं कि) "हे पार्वती जी, सज्जन का निरादर तत्काल सब प्रकार के कल्याण को नष्ट कर देता है।" जिस समय ही रावण ने विभीषण का त्याग किया उसी समय वह अभागा (रावण) अपने वैभव को खो बैठा।

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहउँ जाइ चरन-जलजाता। अरुण मृदुल सेवक-सुख दाता॥

पाहीं—पास। माहीं—में। जलजात—कमल। चरनजल-जाता—(रूपक)। अरुण—लाल। मृदुल—कोमल। सेवक-सुखदाता—सेवकों को सुख देने वाला (तत्पु०)। मनोरथ—कामना, संकल्प।

विभीषण प्रसन्न होकर अपने मन में अनेक संकल्प करता हुआ रामचंद्र के पास चला। (वह सोचने लगा), "मैं जाकर रामचन्द्र जी के लाल लाल और कोमल चरणकमलों को देखूँगा जो सेवकों को सुख देने वाले हैं।"

जा पद परसि तरी रिसिनारी। दंडक-कानन-पावनकारी॥
जे पद जनकसुता उर लाये। कपट-कुरंग-संग धर धाये॥
हर-उर-सर-सरोज पद जेई। अहो भाग्य मैं देखिहउँ तेई॥

परसि—स्पर्श करके, छूकर। रिसिनारी—ऋषिनारी, ऋषि की पत्नी। (तत्पु०), अहल्या। पावनकारी—पवित्र करने वाला (तत्पु०)। दंडक...कारी—(तत्पु०)। कपट कुरंग—कपटरूप वाला मृग (तत्पु० अथवा कर्मधारय), मारीच। धर धाये—पकड़ने को दौड़े। हर-उर—महादेव जी का हृदय (तत्पु०)। उर-सर—हृदयरूपी तालाब (रूपक)। हरउरसरसरोज—महादेव जी के हृदयरूपी तालाब का कमल (तत्पु०)। जेई—जो। तेई—वे, उन्हे।

"मेरा अहोभाग्य है कि मैं उन्ही चरणों को देखूँगा जिनका स्पर्श करके अहल्या तर गई, जो (रामचन्द्र जी के चलने से) दंडक वन को पवित्र करने वाले हैं, जिन चरणों को श्री जानकी जी हृदय में धारण करती हैं, जो चरण कपटरूपी मृग को पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ पड़े थे तथा जो चरण शिव जी के हृदयरूपी तालाब के कमल हैं (अर्थात् जिन चरणों का महादेव जी हरदम अपने हृदय में ध्यान करते हैं)।

नोट—(१) अधिकारी:—गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या की कथा का संकेत है। एक बार जब ऋषि स्नान करने गए हुए थे तब इन्द्र उनका रूप धारण करके अहल्या के पास आया और छल से उसे चरित्रभ्रष्ट कर दिया। गौतम को जब पता लगा तो उन्होंने अहल्या को शाप दिया कि पत्थर हो जा। अहल्या के विनती करने पर फिर उन्होंने कहा कि जब रामचन्द्र जी के चरणों से तेरा स्पर्श होगा तो तू फिर स्त्री हो जाएगी। अहल्या तभी से पत्थर की शिला बनी पड़ी थी। जब रामचन्द्र जी अपने गुरु विश्वामित्र के साथ धनुषयज्ञ देखने के लिए जनकपुर जा रहे थे तब मार्ग में अहल्या की शिला मिली। गुरु के कहने से उन्होंने उसे अपने चरण से छू दिया और वह पुनः अपने पूर्वरूप को प्राप्त हो गई।

(२) कपट-कुरङ्ग:—शूर्पणखा की जब नाक काट ली गई और खर दूषण और त्रिशिरा मारे गए। तो शूर्पणखा रोती हुई रावण के पास गई। रावण ने उस समय बदला लेने के लिए मारीच को बुला कर कहा, "तू स्वर्ण मृग का रूप धारण कर जहां राम रहते हैं वहाँ जा। जब दोनों भाई तुझे मारने के लिए तेरे पीछे दौड़ेंगे तो मैं सीता को अकेले में पाकर हर लाऊँगा।" मारीच ने ऐसा ही किया और रामचंद्र जी के बाण द्वारा वध को प्राप्त हुआ।

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरत रहे मन लाइ ।
ते पद आज बिलोकिहउँ, इन नयनन्हि अब जाइ ॥

पायन्ह—चरण। पादुका—खड़ाऊँ। रहे मन लाइ—मन में लाए हुए हैं, मन में ध्यान करते रहते हैं।

"जिन चरणों की पादुकाओं का भरत जी अपने मन में

ध्यान करते रहते हैं उन्हें अब आज जाकर मैं अपने इन नेत्रों से देखूँगा।"

नोट—भरत रहे मन लाइ:—कैकयी ने दशरथ जी से दो वर माँगे थे, एक तो रामचंद्र जी का वनवास और दूसरा भरत को राज्य। रामचंद्र जी के वनगमन के पश्चात् जब भरत जी अपनी ननिहाल से लौटे तो उन्होंने अपने बड़े भाई के राज्य को लेना अस्वीकार किया। परन्तु जब गुरुजनों ने समझाया कि "राज्य का काम तो होना ही चाहिए और अब रामचंद्र जी के पीछे बड़े होने के कारण तुम्हारा ही उत्तरदायित्व है," तो भरत जी ने उनके प्रतिनिधि की हैसियत से कार्य करना स्वीकार किया और राज्यासन पर रामचंद्र जी की पादुकाओं की प्रतिष्ठा की। उन्होंने चौदह वर्ष तक स्वयं साधु-जीवन व्यतीत किया और अपने को रामचंद्र जी की पादुकाओं के अधीन समझते हुए राज्यकार्य को सँभाला।

यहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिन्धु येहि पारा॥

सपदि—शीघ्र। येहि—इस, अर्थात् समुद्र की दूसरी तरफ़ जिधर रामचंद्र जी थे।

इस प्रकार प्रेमपूर्वक विचार करता हुआ विभीषण शीघ्र समुद्र के इस पार पहुँचा।

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेखा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आये। समाचार सब ताहि सुनाये॥

रिपुदूत—शत्रु का दूत (तत्पु०)। बिसेखा—विशेष। राखि—रखकर, रोककर। कपीस—सुग्रीव।

बंदरों ने जब विभीषण को आता हुआ देखा तो उन्होंने

समझा कि यह शत्रु का कोई ख़ास दूत है। (इसलिए वे) उसे रोक कर सुग्रीव के पास गए और उसे सब समाचार सुनाया।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन-भाई॥
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥

दसाननभाई—(तत्पु०)। बूझिये—समझते हो। काहा—क्या। नरनाहा—नरनाथ, मनुष्यों का स्वामी, राजा, ईश्वर।

सुग्रीव ने (बंदरों का समाचार सुनकर रामचंद्र जी से) कहा, "हे रघुनाथ जी, सुनिए, रावण का भाई मिलने आया है।" रघुनाथ जी बोले, "हे मित्र, तुम क्या समझते हो (किस मतलब से यह आया है)?" सुग्रीव ने उत्तर दिया, "हे भगवन् सुनिए"—

जानि न जाय निसाचर-माया। कामरूप केहि कारन आवा॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा॥

कामरूप—काम (इच्छा) से रूप है जिसका (बहु०), जो इच्छा के अनुसार अपना रूप बना-बदल सकता है, राक्षस राक्षसकुल में उत्पन्न विभीषण। भावा—पसन्द है।

"राक्षसों की माया समझ में नहीं आती। (न मालूम यह) राक्षस किस कारण से आया है। धूर्त (शायद) हमारा भेद लेने आया है। मुझे तो यह बात पसन्द आती है कि इसे बाँध रक्खा जाए।"

सखा नीति तुम नीकि विचारी। मम पन सरनागत-भयहारी॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत-बच्छल भगवाना॥

नीकि—अच्छी। पन—प्रण, प्रतिज्ञा। सरनागतभयहारी—शरण में आगत (आए हुए) के भय को हरने वाला (तत्पु०)। बच्छल—वत्सल, अनुग्रह करने वाले।

रामचन्द्र जी बोले, "हे मित्र, तुमने उचित नीति सोची है। (परंतु) शरण में आए हुए मनुष्य के भय को दूर करना मेरी प्रतिज्ञा है।" रामचंद्र जी के ये शब्द सुनकर हनुमान जी को (इस बात का) हर्ष हुआ कि भगवान शरणागत व्यक्ति पर अनुग्रह करने वाले हैं।

सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि॥

कहुँ—को। अनुमानि—विचार करके। अनहित—हानि। पामर—नीच, चाण्डाल। बिलोकत—देखने से। हानि—बुराई।

रामचंद्र जी बोले, "जो लोग अपनी हानि की शंका करके शरण में आए हुए व्यक्ति को छोड़ देते हैं, वे नीच हैं, पापी हैं—उन्हे देखने में भी बुराई है।—

कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू। आये सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होहि जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

कोटि—करोड़। बिप्रबध—ब्राह्मण की हत्या (नपुं०)। तजउँ—छोड़ता हूँ। सनमुख—सम्मुख, सामने। अघ—पाप।

"जिस मनुष्य को करोड़ ब्राह्मणों की हत्या (का पाप तक) लग चुका है, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता हूँ। जैसे ही कोई व्यक्ति मेरे सामने आता है वैसे ही उसके करोड़ जन्म तक के पाप नष्ट हो जाते हैं।"—

पापवन्त कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट-हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई॥

पापवन्त—पापवान्, पापी। सहज—कुदरती, पैदाइशी। काऊ—कभी। जौं पै—यदि। दुष्टहृदय—दुष्ट है हृदय जिसका (बहु०)। सोइ—वह, विभीषण।

"पापी मनुष्य का यह सहज स्वभाव होता है कि उसे मेरा भजन कभी अच्छा नहीं लगता। यदि विभीषण दुष्ट हृदय वाला होता तो क्या यह मेरे सामने आता ?—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छलछिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

निर्मल—स्वच्छ, साफ, कपटरहित। निर्मलमन—निर्मलमन है जिसका (बहु०)। जन—मनुष्य।

"जो मनुष्य निर्मल मन वाला है वही मुझे पा सकता है (क्योंकि) मुझे छल-कपट पसन्द नहीं। और यदि रावणने उसे भेद लेने के लिए भी भेजा है तो भी, सुग्रीव, कोई भय या हानि की बात नहीं है।

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सिर नाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

जग—जगत्, संसार। जेते—जितने। हनइ—मार दें। निमिष—पलक मारने में जितनी देर लगती है उतनी। नाईं—भाँति।

"हे सखा, संसार में जितने भी राक्षस हैं उन सब को लक्ष्मण पलक मारते मारते नष्ट कर सकते हैं। और यदि विभीषण भयभीत होकर शरण में आया है तब तो मैं उसे अपने प्राणों की तरह रक्खूँगा —।"

उभय भांति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगद-हनू-समेत॥

उभय—दोनों। उभय-भाँति—दोनो अवस्थाओं में। आनहु—ले आओ। कृपानिकेत—कृपा के स्थान (तत्पु०)। अंगदहनूसमेत (तत्पु०)

रामचंद्र जी ने हँस कर कहा, "(अतएव) दोनो अवस्थाओं में (अर्थात्, चाहे वह भेद लेने आया हो, चाहे डर कर शरण के लिए) उसे यहाँ ले आओ ।" (यह सुनते ही) तमाम बन्दर अंगद और हनुमान् जी के साथ, "जय कृपालु, जय कृपालु" कहते हुए (विभीपण को लिवा लाने के लिए चले)।

सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुना कर ॥
दूरहि ते देखे दोउ भ्राता। नयनानन्द-दान के दाता ॥

सादर—सम्मानपूर्वक। इज्जत के साथ (अव्ययी भाव)। करुणाकर—दया के खजाना (तत्पु०) । नयनानन्ददान—नेत्रों को आनन्द का दान (तत्पु०) । दाता—देने वाले

वे वानर विभीपण को सम्मानसहित आगे करके वहाँ ले चले जहाँ रामचन्द्र जी थे। विभीपण ने दूर से ही दोनों भाइयों (राम और लक्ष्मण) को, जो कि नेत्रों को आनन्द का दान देने वाले थे, देख लिया।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलम्ब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत-भय मोचन ॥
सिंहकंध आयत उर सोहा। आनन अमित-मदन-मन मोहा ॥

बहुरि—फिर। छबिधाम—सुन्दरता का घर (तत्पु०) बिलोकी—देख कर। पल—पलक। भुज—बाहु। प्रलम्ब—लम्बी। कंज—कमल। कंजारुणलोचन—कमल के समान लाल नेत्र हैं जिनके (बहु० उपमा)। श्यामल—साँवला। गात—गात्र, शरीर। प्रणतभयमोचन—विनीत के भय को दूर करने वाले (तत्पु०)। सिंहकंध—सिंहस्कंध—सिंह कासा कंधा है जिनका (बहु०) । आयत—चौड़ा । उर—उरस, वक्षस्थल, सीना। अमित—अनेक असंख्य। मदन—कामदेव।

तदनन्तर सुन्दरता के घर श्री रामचंद्र जी को फिर देखकर विभीषण एकटक हो पलकों को रोककर ठिठक रहा (अर्थात् रामचन्द्र जी का सौन्दर्य ऐसा था कि विभीषण स्तंभित हो गया और पलकों का गिरना बंद कर एकटक उनको देखने लगा। उनकी लम्बी लम्बी भुजाएँ थीं, कमल के समान कुछ सुर्खी लिए हुए नेत्र थे और साँवला शरीर था जो विनीत होकर आने वालों के भय को दूर करता था। सिंह के से पुष्ट उनके कंधे थे, चौड़ी छाती थी और मुख ऐसा था जो अनेक कामदेवों के भी मन को मोहित करने वाला था।

नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर-बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

नीर—जल। धरि धीर—धीरज धर कर, सँभल कर। मृदु—कोमल। कर—का। बंस—वंश कुल। सुरत्राता—देवताओं के रक्षक (तत्पु०)। सहज—स्वाभाविक। तामस—तमोगुण से भरा हुआ। उलूकहिं—उल्लू को। तम—तमस, अँधेरा। नेह—स्नेह, प्यार, अनुराग। जथा—यथा, जैसे।

(रामचन्द्र जी की छवि को देख कर विभीषण प्रेम से विह्वल हो गया और उसके) नेत्रों में जल भर आया तथा शरीर रोमांचित हो गया। फिर अपने मन को सँभाल कर उसने कोमल वाणी में कहा, "हे नाथ, हे देवताओं के रक्षक, मैं रावण का भाई हूं और राक्षसों के कुल में मेरा जन्म हुआ है (अतः) स्वभाव से ही मेरे तमोगुण से भरे हुए शरीर को पाप से अनुराग है जिस प्रकार कि उल्लू को अँधेरे से अनुराग होता है।—

स्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन-भव-भीर ।
त्राहि त्राहि आरति-हरन, सरन-सुखद रघुबीर ॥

स्रवन—श्रवण, कान । भव—उत्पत्ति, संसार । भीर—कष्ट, संकट । भंजन-भवभीर—संसार के (अथवा संसार रूपी) कष्टों को नष्ट करने वाले (तत्पु०) । त्राहि—रक्षा करो । आरति-हरन—दुःख को हरने वाले (तत्पु०) । सरन-सुखद—शरणागत को सुख देने वाले (तत्पु०) ।

"कानों से आप की कीर्ति को, कि प्रभु (आप) संसार के (जन्ममृत्यु रूपी) संकट को नष्ट करने वाले हैं, सुन कर मैं आया हूं । हे दुःखों को हरने वाले, शरणागतों को सुख देने वाले रघुनाथ जी, मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो ।"

अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदय लगावा ॥

दंडवत्—सीधा उलटा लेट कर जो प्रणाम किया जाता है । दीन—विनीत ।

इस प्रकार कह चुकने पर दंडवत् प्रणाम करते हुए विभीषण को जब भगवान् ने देखा तो वह तत्काल बड़े हर्ष से उठ खड़े हुए । उसके विनीत बचनों को सुन कर प्रभु के मन में प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपनी लम्बी भुजाओं से पकड़ कर उसे हृदय से लगा लिया ।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत-भय-हारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥

ढिग—पास । परिवारा—कुटुम्ब । कुठाहर—कुस्थान, कुठौर । लंकेस—लंका का राजा (भगवान् ने विभीषण को पहले ही लङ्का का राजा कह कर पुकारा) ।

भक्तों के भय को दूर करने वाले रामचन्द्र जी ने अपने भाई सहित उससे मिल कर उसे अपने पास बिठाया और यों वचन कहे, "कहो लंकेश, अपने परिवार सहित कुशल से तोहो ? तुम्हारा निवास तो बड़े बुरे स्थान में है।"—

खलमण्डली बसहु दिनराती। सखा धर्म निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नयनिपुन न भाव अनीती॥

खलमण्डली—दुष्टों का समाज। निबहइ—निभता है। रीति—व्यवहार, जीवन चर्या। नयनिपुन—नीति में निपुण, नीति में चतुर। अनीति न भाव—अनीति तुम्हें पसन्द नहीं है।

"रात दिन दुष्टों के समाज में रहते हो। मित्र, उस स्थान में तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभ पाता है ? मैं तुम्हारे व्यवहार, रहन-सहन को अच्छी तरह जानता हूं, तुम नीति में बड़े निपुण हो और अनीति तुम्हें अच्छी नहीं लगती।"

बरु भलबास नरक कर ताता। दुष्टसंग जनि देइ विधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम कीन्हि जानि जन दाया॥

बरु—भले ही, चाहे। रघुराया—रघुराज। जन—दास, सेवक। दाया—दया।

"हे तात, नरक में रहना भले ही अच्छा है, परन्तु ब्रह्मा किसी को दुष्ट मनुष्य का साथ न दे।" (विभीषण कहने लगा), "हे रघुराज, आपने जो मुझे अपना दास समझ कर कृपा की है तो अब आपके चरणों को देखकर सब प्रकार कुशल है।"

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक-धाम तजि काम॥

जीव—प्राणी, मनुष्य। कहुँ—को। सोकधाम—शोक का घर, शोक को उत्पन्न करने वाला। काम—वासना, लालसा। विश्राम—शान्ति।

"प्राणी को उस समय तक कुशल नहीं, न सुपने तक में शान्ति ही मिलती है, जब तक वह तमाम प्रकार के शोकों की घर, वासना को त्याग कर राम का (अर्थात् आपका) भजन नहीं करता।

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चापसायक कटि भाथा॥

कटि—कमर। भाथा—तूणीर, तरकस।

"जब तक हृदय में धनुषबाणधारी, कमर में तरकस लगाए हुए, रामचन्द्र जी का वास नहीं होता तब तक वहाँ लोभ, मोह, मात्सर्य, मद, और मान का निवास रहता है।

ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसत जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु-प्रताप-रवि नाहीं॥

ममता—मोह, अपनापन। तरुण—उत्कट, घोर। तमी—रात्रि। रागद्वेप-उलूक-सुखकारी—राग और द्वेप (द्वन्द)-रूपी उलूकों (उपमित) को सुख देने वाली (तत्पु०)। प्रभुप्रताप रवि—प्रभुका प्रताप (तत्पु०) रूपी सूर्य (उपमित)

"ममता रूपी घोर अँधेरी रात, जो रागद्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है, तभी तक मनुष्य के हृदय में रह पाती है जब तक कि भगवत्प्रताप रूपी सूर्य नहीं उदय होता (अर्थात् मनुष्य का ममता भाव ही अँधेरी रात के समान है और जब तक ममता रहती है तभी तक रागादि भी रहते हैं जो उल्लुओं के समान है। प्रभुप्रताप सूर्य के समान है। सूर्य निकलते ही रात भी दूर हो

जाती हैं और रात के जीव उल्लू आदि भी। ईश्वर की भावना हृदय में उदय होते ही ममता राग आदि बुरे भाव फिर नहीं रहने पाते)—

अलंकार—रूपक (सांग)

अब मैं कुसल मिटे भव-भारे। देखि राम पद-कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिबिध भवसूला॥

भवभारे—संसार के कष्ट। व्याप—व्यापते हैं। त्रिविध—तीन प्रकार के अर्थात् शारीरिक, मानसिक और दैविक। भवसूला—भवशूल, संसार के कष्ट।

"लो हे राम, अब आपके चरणकमलों का दर्शन कर मैं सकुशल हूँ और मेरे संसार के कष्ट दूर हो गए। हे कृपालु, तुम जिस पर अनुकूल होते हो (अर्थात् जिस पर तुम कृपा करते हो) उसे तीनों प्रकार के सांसारिक कष्ट नहीं हो सकते।"

मैं निसिचर अति-अधम-सुभाऊ। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहि प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा॥

अति-अधम-सुभाऊ—अति नीच स्वभाव वाला (बहु०) शुभ—अच्छा। आचरण—काम। काऊ—कोई। जासु—जिसका।

"मैं परम नीच स्वभाववाला राक्षस ठहरा, कोई भी अच्छा काम मैंने नहीं किया। (ऐसे) मुझ (नीच) को प्रभु (आप)ने, जिनके रूप का ध्यान तक मुनियों को नहीं हो पाता, (प्रत्यक्ष रूप में) प्रसन्न हो कर हृदय से लगा लिया। (अच्छे कर्म वाले मुनियों को तो ध्यान तक में आप प्राप्त नहीं होते, और बुरे कर्म वाले मुझे साक्षात् शरीर में आपने हृदय से लगाया, यह आपकी दयालुता की हद है)।—

अहोभाग्य मम अमित अति, रामकृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि-सिव-सेव्य जुगल पद कंज॥

अमित—परम। कृपा-सुख-पुंज—कृपा और सुख के ढेर, कृपा और सुख के निधान। बिरंचि-सिव-सेव्य—ब्रह्मा और शिव (द्वन्द) से सेवा किए जाने योग्य (तत्पु०)। जुगल—युगल, दोनों। कंज—कमल।

"हे कृपाधाम, सुखधाम, रामचन्द्र जी, मेरा परम अहो भाग्य है कि मैंने अपने नेत्रों से ब्रह्मा और महादेव जी द्वारा सेवित आपके दोनों चरणकमलों के दर्शन किए।"

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

निज—अपना। जान—जानते हैं। भुसुंडि—काकभुशुण्ड। ऊ—भी। चराचर—चलने वाले और न चलने वाले पदार्थ, चेतन और जड़ पदार्थ, अर्थात् तमाम जगत्। तकि —ताक कर, देख कर। सद्य—तुरन्त, तत्काल।

(भगवान् ने कहा), "हे सखा सुनो, अपना स्वभाव तुम्हे बतलाता हूं। काकभुशुण्ड, महादेव जी और पार्वती जी उस (मेरे स्वभाव) को जानते हैं। (मेरा स्वभाव यह है कि) जो मनुष्य तमाम विश्व का भी द्रोही है वह भी यदि संसार से सभय होकर और मद मोह तथा तरह तरह के छल कपट छोड़ कर मेरी शरण खोजता हुआ आता है तो मैं उसे तुरन्त साधु के समान बना देता हूं।

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कइ ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बांध बरि डोरी॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उरबस कैसे। लोभी-हृदय बसइ धन जैसे॥

जननी—माता। जनक—पिता। बन्धु—भाई, रिश्तेदार। सुत—पुत्र। दारा—स्त्री। तनु—शरीर। सुहृद—मित्र। कइ—की। ममताताग—ममता रूपी तागा (उपमित) बरि—बट कर। समदरसी—समदर्शी, जो सब को समान रूप से देखता है, जो न तो किसी को विशेप प्रेम करता है न किसी को घृणा।

"माता, पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, मकान, मित्र और कुटुम्ब-इन सब के ममता रूपी तागों को बटोर कर और उनकी डोरी बना कर जो मनुष्य अपने मनको मेरे चरणो से बाँध देता है (अर्थात् इन तमाम पदार्थों के साथ अपने मनको मेरे चरणों में अर्पित कर देता है), जो सब को समान दृष्टि से देखने वाला है, जिसे न तो कोई इच्छा है और न जिसके हृदय में किसी प्रकार का हर्ष, शोक या भय ही है वह सज्जन मेरे हृदय में किस प्रकार रहता है?—जैसे लोभी मनुष्य के हृदय में धन रहता है (जिस प्रकार लोभी मनुष्य को धन प्यारा होता है उसी प्रकार उक्त सज्जन मुझे प्यारा है।)

तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥
सगुन उपासक परहित, निरत नीति-दृढ़-नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज-पद-प्रेम॥

सारिखे—सदृश, समान। आन—अन्य, दूसरा। निहोरे खुशामद, विनती, प्रेरणा सगुण—गुणों वाला ब्रह्म। सगुण-उपासक—सगुण ईश्वर को पूजने वाला (तत्पु०) पर-हित-निरत—दूसरे के उपकार में लगा रहने वाला (तत्पु०)। नेम—नियम।

नीति-दृढ़-नेम—नीति में दृढ़ (पक्का) नियम (निष्ठा या आचरण) है जिनका (बहु०)। द्विज-पद-प्रेम—ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम (तत्पु०)।

"तुम्हारे समान सज्जन ही मुझे प्यारे हैं। (उन्हीं के लिए) मैं शरीर धारण करता हूं, दूसरी किसी (बात की) प्रेरणा से नहीं। जो मनुष्य सगुण ईश्वर की पूजा करते हैं,, जो दूसरे के उपकार में लगे रहते हैं, नीत-पालन ही जिनका पक्का नियम है और जो ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं वे मुझे अपने प्राणों के समान प्यारे हैं।"

नोट—सगुन-उपासकः—संसार में दो तरह के ईश्वर-भक्त होते हैं —एक तो साकार ईश्वर को मानने वाले और दूसरे निराकार ईश्वर को मानने वाले। पहले प्रकार के उपासक सगुण उपासक कहलाते हैं और भक्ति मार्गी होते हैं दूसरे प्रकार के निर्गुण उपासक और ज्ञानमार्गी।

सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। तातें तुम अतिसय प्रिय मोरे॥
राम-बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा-बरूथा॥

सकल—सब। तातें—इससे, इसलिए। अतिशय—बहुत। वानरयूथ—बंदरों का समूह। कृपावरूथ—कृपानिधि।

"हे लंकेश विभीषण, सुनो, तुम में सब गुण (मौजूद हैं), इसीसे तुम मुझे बहुत प्रिय हो" रामचन्द्र के बचन सुनकर तमाम वानर समूह, "जय कृपा सागर, जय कृपासागर, कहने लगे।

सुनत बिभीषन प्रभु कै बानी। नहिं अघात स्रवनामृत जानी॥
पद-अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा॥

अघात—तृप्त होना। सवनामृत—श्रवणामृत, कानों के लिए अमृतस्वरूप। जानी—जानकर। पद-अम्बुज—चरण कमल (रूपक समास)

विभीषण प्रभु रामचन्द्र जी की वाणी को अपने कानों के लिए अमृत समान समझ कर उसे सुनते हुए नहीं अघाता। वह बार बार उनके चरण कमलों को पकड़ता है और उसके हृदय में रामचन्द्र जी का अपार प्रेम नहीं समा पाता।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर-अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु-पद-प्रीति-सरित सो बही॥

सचराचर-स्वामी—चेतन और जड़ (जगत्) के स्वामी, तमाम विश्व के मालिक (तत्पु०)। प्रणतपाल—विनीतों की रक्षा करने वाले। उर-अन्तर-यामी—हृदय के भीतर जाने वाले हृदय के भीतर की बात जानने वाले (तत्पु०)। वासना—कामना, इच्छा। प्रभु-पद-प्रीति-सरित—भगवान् के चरणों (तत्पु०) में प्रीति (तत्पु०) की नदी (रूपक)।

(विभीषण कहने लगा), "हे देव, सुनो, आप समस्त विश्व के स्वामी हैं, प्रणतों के पालन करने वाले तथा (लोगों के) हृदय के भीतर की बात जानने वाले हैं। (अर्थात् आप मेरे हृदय की भी सब बात जानते हैं, अतः आप से क्या कहूं!) मेरे हृदय में पहले तो कुछ वासना थी, (परन्तु) वह अब आपके चरणों की प्रीति रूपी नदी में बह गई। (अर्थात् अब कोई वासना नहीं है)।—

अब कृपालु निज भगति पावनी। देहु सदा सिव-मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधु कर नीरा॥

पावनी—पवित्र। सिवमनभावनी—जो शिव जी के मन को भाती है (अच्छी लगती है, तत्पु०) एवमस्तु—ऐसा ही हो। रनधीरा—रणधीर, युद्ध में धीरतापूर्वक रहने वाले, न घबड़ाने वाले। नीर—जल।

"अब हे कृपा करने वाले रामचन्द्र जी, मुझे अपनी वही पवित्र भक्ति दीजिए जो शिव जी के मन को सदा प्रिय है। युद्ध में स्थिर रहने वाले रामचन्द्र जी ने कहा, "ऐसा ही होगा," और तुरन्त समुद्र का जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमनवृष्टि नभ भई अपारा॥

जदपि—यद्यपि। दरसु—दर्शन। अमोघ—अव्यर्थ, अचूक। सारा—लगाया। सुमन-वृष्टि—पुष्पों की वर्षा। नभ—आकाश में। अपारा—बहुत, खूब।

रामचंद्र जी बोले, "हे मित्र, यद्यपि तुमको (इसकी) इच्छा नहीं है (कि मैं तुम्हारा राजतिलक करूँ तथापि) मेरा दर्शन संसार में निरर्थक नहीं जाता, (उसका फल अवश्य होता है, इसलिए मैं तुम्हारा तिलक अवश्य करूँगा)।" ऐसा कहकर भगवान् ने उसका तिलक किया और आकाश से फूलों की खूब वर्षा होने लगी।

रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषन राखेउ, दीन्हेउ राज अखंड॥

रावणक्रोधअनल—रावण की क्रोधरूपी अग्नि (रूपक)। समीर—वायु। प्रचंड—प्रबल, जबर्दस्त। राखेउ—रक्षा की। अखंड—अमिट।

रावण का क्रोध अग्नि के समान है और (रामचन्द्र जी का) अपना श्वास प्रचंड वायु है (जो उस अग्नि को और अधिक प्रज्वलित करता है। उस क्रोधाग्नि में) जलते हुए विभीषण की भगवानने रक्षा करली और उसे (लंका का) अटल राज्य दे दिया।

जो सम्पति सिव रावनहिं, दीन्हि दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा बिभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

माथ—मस्तक, सिर। संपदा—संपत्ति, ऐश्वर्य। सकुचि—संकोच के साथ।

रावण के द्वारा अपने दसों सिर दे दिए जाने पर जो संपत्ति शिव जी ने उसे दी थी वह संपत्ति रामचंद्र जी ने विभीषण को संकोच के साथ दी (कि मैं उसे कुछ नहीं दे रहा हूँ।)

अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूछ बिषाना॥
निजजन जानि ताहि अपनावा। प्रभुसुभाव कपि-कुल-मन भावा॥

आना—दूसरा। पूछ—पुच्छ। बिषाना—विषाण, सींग। जन—सेवक। कपिकुल—बन्दरों का कुटुम्ब, बन्दरों का समूह।

ऐसे स्वामी (रामचंद्रजी) को भी छोड़ जो दूसरों का भजन करते हैं वे मनुष्य बिना पूछ और सींग के पशु हैं। अपना सेवक जान कर उसे (विभीषण को) अपना लिया, रामचन्द्र जी का यह स्वभाव वानर समूह को बड़ा अच्छा लगा।

पुनि सर्बग्य सर्ब-उर-बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति-प्रतिपालक। कारन मनुज दनुजकुल घालक॥

सर्वज्ञ—सब कुछ जानने वाले, जिनसे कोई बात छिपी नहीं है। सर्व-उर-वासी—सब के हृदय (तत्पु०) में रहने वाले (तत्पु०)। सर्वरूप—सब प्रकार के रूपों में जो विद्यमान है। सब रहित—

सब से अलग। उदासी—उदासीन, निष्पक्ष, अलिप्त। कारण-मनुज—कारणवश जिन्होंने मनुष्यरूप धारण किया है। दनुज-कुल-घालक—राक्षसों के वंश का नाश करने वाले (तत्पु०)

फिर सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वस्वरूप तथा सब से अलिप्त भगवान् रामचन्द्र जी जो नीतिमर्यादा की रक्षा करने वाले और राक्षसों के संहार करने वाले हैं तथा जिसने (भक्तों की रक्षा और दुष्टोंका नाश करने के) कारण से (अवतार लेकर) मानव शरीर धारण किया है, इस प्रकार बोले—

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥

बीर—शूर, बहादुर। तरिय—तरा जाए, पार किया जाए। जलधि—समुद्र। गंभीरा—गहरा। संकुल—भरा हुआ। मकर—मगर। उरग—सर्प। झष—मछली। जाति—समूह। अगाध—गहरा। दुस्तर—न पार करने योग्य।

"हे वीर सुग्रीव, हे वीर विभीषण, सुनो—यह गहरा समुद्र किस प्रकार पार किया जाए, जो मगर, सर्प तथा मत्स्य जाति (के जंतुओं) से भरा हुआ है और परम अगाध तथा सब प्रकार से अतरणीय है।"

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि-सिंधु-सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति अस गाई। बिनय करिय सागर सन जाई॥

सोषक—शोषक, सुखा देने वाला। कोटि सिंधु सोषक (तत्पु०)। तव—आपका। सायक—बाण। जद्यपि, तदपि—यद्यपि, तथापि। गाई—कहती है। बिनय—विनती, प्रार्थना।

विभीषण ने कहा, "सुनिए रामचन्द्र जी, यद्यपि आपका बाण करोड़ों समुद्रों को भी सुखा सकता है तथापि नीति

ऐसा कहती है कि समुद्र से इसके लिए प्रार्थना की जाए (कि हम उसे पार कर सकें)।

प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि', सकल भालु-कपि-धारि ॥

प्रयास—परिश्रम। धारि—धारा, समूह, सेना।

"हे स्वमी समुद्र आपका कुलगुरु है (अतः) यह कुछ उपाय सोच कर वताएगा। (इस प्रकार) तमाम रीछों और वानरों की सेना विना परिश्रम के ही पार होगी।

नोट—कुलगुरु जलधिः—राजा सगर रामचन्द्र जी के एक पूर्वज थे। इन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए घोड़ा छोड़ा था। इन्द्र को भय हुआ कि अश्वमेघ करके ये मेरा इन्द्रासन न छीन ले, अतः यज्ञ में विघ्न डालने के लिए वह उस घोड़े को चुरा कर कपिल मुनि के आश्रम के पास छोड़ आया। जव वह घोड़ा कहीं नहीं दिखाई दिया तो सगर के सौ पुत्रों ने पाताल में उसकी तलाश करने के लिए पृथ्वी को खोद डाला। जहां जहाँ पृथ्वी खोदी गई वहाँ वहाँ जल भर गया और इस प्रकार समुद्र की उत्पत्ति हुई रामचन्द्र जी के पूर्वजों द्वारा उसकी उत्पत्ति होने के कारण ही उसे यहां पर उनका कुलगुरु कहा गया है। समुद्र का नाम सागर भी इसी लिए पड़ा कि उसे सगर के पुत्रों ने खोदा था।

सखा कही तुम नीकि उपाई। करिय दैव जौं होइ सहाई ॥
मन्त्र न यह लछिमन मन भावा। रामवचन सुनि अति दुख पावा ॥
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिय सिंधु करिय मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥

नीकि—अच्छी। उपाई—उपाय। दैव—भाग्य। जौं—यदि। सहाई—सहाय। मंत्र—सलाह। कवन—कौन। भरोसा—विश्वास। रोसा—रोष, क्रोध। कादर—अकर्मण्य, डरपोक, पोच। आधार—सहारा।

(रामचन्द्र जी ने कहा) "हे मित्र, तुमने यह अच्छा उपाय बताया। यदि भाग्य सहायता करे तो ऐसा ही कीजिये।" यह सलाह लक्ष्मण जी को पसन्द नहीं आई और उन्हे रामचन्द्र जी की बात सुन कर बड़ा दुःख हुआ। (लक्ष्मण जी बोले), "हे स्वामी, भाग्य का क्या भरोसा है। (मेरी तो राय यह है कि आप) क्रोध करके समुद्र को सुखा डालिए। (भाग्य तो) पोच आदमियों का ही एक मात्र आधार है। आलसी लोग ही 'भाग्य' 'भाग्य' चिल्लाया करते हैं।"

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसहि करब धरहु मन धीरा॥
असकहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गये रघुराई॥
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरनाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥

करब—करेंगे। दर्भ—कुश, डाभ। डसाई—फैला कर, बिछा कर।

(लक्ष्मण जी की बात) सुन कर रामचन्द्र जी हँसे और बोले "तुम अपने मन में धीरज रक्खो, ऐसा ही करेंगे।" इस प्रकार कह कर उन्होंने अपने छोटे भाई लक्ष्मण जी को समझाया और फिर समुद्र के पास गए। (वहाँ पहुँच कर) पहले सिर नवा कर समुद्र को प्रणाम किया। तदनन्तर किनारे पर कुश बिछा कर बैठे।

जबहि विभीषन प्रभु पहँ आये। पाछे रावन दूत पठाये॥

सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, सरनागत पर नेह॥

तिन्ह—उन्होंने। सराहहिं—प्रशंसा करते हैं। नेह—स्नेह।

जिस समय विभीषण (रावण की सभा छोड़ कर) रामचन्द्र जी के पास आए (उसी समय) उनके पीछे रावण ने अपने दूत भेजे। उन दूतों ने छल पूर्वक बंदरों का रूप धारण करके (जिससे बन्दरों के बीच में पहचाने न जा सकें) प्रभु के तमाम चरित देखे कि शरणागत पर किस प्रकार प्रेम करते हैं। (यह देख कर) वे मन ही मन प्रभु के गुणों की सराहना करते थे।

प्रगट बखानहिं रामसुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥

प्रगट—प्रकट, खुल्लमखुल्ला। गा—गया। बिसरि—विस्मृत। दुराउ—छिपाव। आने—लाए।

(रावण के दूत) अपने छिपाव को (छल रूप को) प्रेम के वश हो कर भूल गये और खुल्लमखुल्ला भगवान् के गुणों का वर्णन करने लगे। वानरों ने जब उन्हें पहचान लिया कि वे शत्रु के दूत हैं तो सब को बाँध कर सुग्रीव के पास ले आए।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाये। बाँधि कटक चहुँ पास फिराये॥
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥

कटक—सेना। पास—पार्श्व। चहुँपास—चारों तरफ।

सुग्रीव ने कहा, "हे बन्दरो सुनो, इन राक्षसों को अंगहीन करके भेज दो।" सुग्रीव के वचन सुन कर वानर गण दौड़ पड़े और दूतों को बाँध कर अपनी सेना के चारों ओर घुमाने लगे

बन्दर उन्हे तरह तरह से मारने लगे और राक्षसों को दीनतापूर्वक चिल्लाने-पुकारने पर भी उन्हे नहीं छोड़ा, (पीटते ही रहे)।

जो हमार हर नासा-काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥
सुनि लछमन सब निकट बुलाये। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाये॥

नासा—नाक। काना—कर्ण, कान। कोसलाधीस—रामचंद्र जी। आन—शपथ। दया लागि—दया के कारण, दया करके।

(जब बंदर दूतों को अङ्गहीन करने लगे तो उन्होंने विनती से कहा), "जो कोई हमारे नाक-कान काटे उसे रामचंद्र जी की ही शपथ है।" यह सुनकर लक्ष्मण जी ने सब को अपने पास बुलाया और दया करके उन्हें तुरन्त छुड़वा दिया।

रावन कर दीनेहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुल घाती॥

कहेहु मुखागर मूढ़ सन, मम संदेस उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा काल तुम्हार॥

पाती—पत्री, चिट्ठी। बाँचु—पढ़ो। मुखागर—मुख से, जुबानी (अथवा वाचाल, बहुत बोलने वाला)। उदार—श्रेष्ठ।

(लक्ष्मण जी उन दूतों से बोले), "रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना और उससे कहना कि—'हे कुलघाती, लक्ष्मण के वचन को पढ़' उस मूर्ख से तुम जुबानी ही मेरा यह श्रेष्ठ संदेसा कहना (अथवा मूर्ख वाचाल रावण से मेरा यह उदार संदेसा कहना) कि—'सीता को वापिस करके तुम (रामचंद्र जी से) मिलो और, नहीं तो, तुम्हारा काल आ पहुँचा है।"

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत रामजसु लङ्का आये। रावनचरन सीस तिन्ह नाये॥

गुनगाथा—गुणों की कथा, गुणावली (तत्पु०)।

दूतों ने तुरंत लक्ष्मण जी के चरणों में मस्तक नवाया और फिर (राम-लक्ष्मण की) गुणावली का वर्णन करते हुए चले। (आपस में) रामचंद्र जी का यश गाते गाते वे लङ्का आए और आकर रावण के चरणों में सिर नवाया।

बिहँसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबर बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥
करत राज लङ्का सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥

बाता—खबर। सुक—तोता, अथवा उस दूत का नाम। दूत राम का यश गा रहे थे इसलिए रावण ने उन्हें तोता कहा जो बिना सोचे समझे मुँह से कुछ रटने लगता है। केरी—की। नेरी—निकट, समीप। जव—यव, जौ। जव कर कीट—जौ का कीड़ा, घुन। करत राजु - ऐश्वर्य भोगते हुए।

रावण ने हँसकर उनसे खबर पूँछी। (जब उन्होंने उत्तर देने में देर की और फिर भी मुँह से रामयश का ही वर्णन करते रहे तो उसने डाट कर कहा), "अरे शुक, अपना कुशल समाचार क्यों नहीं कहता (कि तूने जो कुछ देखा वह सब अपने अनुकूल है); और फिर विभीषण की भी बात कह कि जिसकी मृत्यु बहुत निकट आ गई है। यहाँ ऐश्वर्य भोगते—भुगाते मूर्ख ने लङ्का को छोड़ दिया सो अब जौ का कीड़ा अर्थात घुन बनेगा (अर्थात् दोनों के बीच में पीसा जायगा)!

पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥
जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बेचारा॥
कहु तपसिन्ह के बात बहोरी। जिन्हके हृदय त्रास अति मोरी॥

भालु-कीस-कटकाई—रीछों और बंदरों की सेना (तत्पु०)। काल प्रेरित—मृत्यु के वश होकर । मृदुलचित्त—कोमल हृदय है जिसका (बहु०)। बहोरी—पुनः, फिर। त्रास—भय।

"फिर भालुओं और बंदरों की सेना का हाल कहो जो कठोर काल के वश होकर चली आ रही है और जिनके जीवन का रक्षक इस समय केवल कोमल हृदय वाला समुद्र हो रहा है (अर्थात् समुद्र उनके मार्ग में पड़ कर उन्हे यहाँ आने से रोक रहा है जिससे उनके प्राण बचे हुए हैं क्योंकि यहां आते ही वे मारे जायँगे) पुनः तपस्वियों का भी हाल कह जिनके हृदय में मेरा बड़ा भय बैठा हुआ है।

की भइ भेट कि फिरिगये, सूवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपुदल-तेजबल, बहुत चकित चित तोर॥

फिरि गए—लौट गए। रिपु-दल-तेज-बल—शत्रु की सेना का तेज और बल (तत्पु० तथा द्वन्द) चकित—हैरान।

(उन तपस्वियों से) भेंट भी हुई अथवा वे मेरा सुयश अपने कानों सुन कर लौट गए? तू शत्रु सेना के तेज और बल (का हाल) क्यों नहीं कहता? तेरा मन बड़ा हैरान है?"

नाथ कृपा करि पूछेहु जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि तैसे॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहि राम तिलक तेहि सारा॥

जातहि—जातेही।

गुप्तचर ने कहा, "हे स्वामी, जिस प्रकार कृपा करके आपने मुझसे (यह सब) पूछा है उसी प्रकार क्रोध छोड़ कर मेरा कहना मान लीजिए। जब आपका भाई जाकर उन तपस्वियों से मिला तो उसके पहुँते ही रामचंद्र जी ने उसका राज्यतिलक कर दिया।"—

रावनदूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुःख नाना ॥
स्रवन नासिका काटन लागे। रामसपथ दीन्हे हम त्यागे ॥

स्रवन—श्रवण, कान। नासिका—नाक।

"हमको अपने कानों से रावण का दूत सुन कर वानरों ने हमें बाँध कर अनेक दुःख दिए। वे हमारे नाक और कान काटने लगे और रामचन्द्र जी की शपथ देने पर उन्होंने हमको छोड़ा।—

पूछेहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटिसत बरनि न जाई ॥
नाना बरनि भालु-कपि-धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी ॥

वदन—मुख। सत—शत, सौ। कोटिसत—सैकड़ों करोड़। नानाबरनि—नानावर्णी, तरह २ के रंगों वाली। भालुकपिधारी—रीछों और बंदरों का धारण करने वाली (तत्पु०)। विकटानन—विकट या भयानक है मुख जिनका (वहु०)। भयकारी—भयपैदा करने वाला (तत्पु०)।

"हे स्वामी, आप रामचन्द्र जी की सेना का हाल पूछते हैं,—उसका तो सौ करोड़ मुँह से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। उस सेना में रंग-विरंगे वड़े वड़े और भयानक रीछ और बंदर हैं जिनके मुख वड़े भयंकर हैं।—

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह में तेहि बल थोरा ॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित-नाग-बल बिपुल बिसाला ॥

जेहि—जिसने। थोरा—स्तोक, कम। कराला—भयंकर। अमितनाम—असंख्य नाम हैं जिनके (बहु०)। भट—योद्धा। नाग—हाथी। अमित-नाग-वल—असंख्य हाथियों का वल है जिनमें (वहु०)। विपुल—वहुत।

"जिस बंदर ने नगर जलाया था और तुम्हारे पुत्र अक्षय-कुमार को मारा था उसका तो तमाम बन्दरों में बहुत थोड़ा बल है। उस सेना में असंख्य नाम वाले, असंख्य हाथियों के बल वाले, बड़े बड़े विशाल, कठोर और भयंकर योद्धा हैं।—

द्विविद, मयन्द, नील, नल, अङ्गदादि विकटासि।
दधिमुख, केहरि, कुमुद, गव, जामवन्त बल रासि॥

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
रामकृपा अतुलित बल तिन्हीं। तृन समान त्रैलोकहिं गनहीं॥

द्विविद...जामवन्त—रीछों और बंदरों के नाम हैं। बलराशि—बल का ढेर (तत्पु०) बल का खजाना, महाबली। गनइ को—कौन गिने। तिन्हहीं—उनमें। तृन—तृण, तिनका। त्रैलोकहिं—त्रिलोकी अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य और पाताल को। गनहीं—गिनते हैं, समझते हैं।

"द्विविद, मयन्द, नील, नल, अंगद, विकटासि, दधिमुख, केहरि, कुमुद, गव औ जाम्बवान् आदि, महाबली (योद्धा उस सेना में हैं)। ये सब सुग्रीव के ही समान हैं और इनके समान करोड़ों हैं, असंख्य हैं, उनको कौन गिन सकता है? रामचन्द्र जी की कृपा से उनमें अतुलित बल है (अर्थात् जिसकी बराबरी नहीं हो सकती।) अपने बल के सामने त्रिलोकी को भी वे तिनके के समान समझते हैं।—

अस मैं स्रवन सुना दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बन्दर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहिं जीतहि रन माहीं॥

पदुम—पद्म। सो—वह, ऐसा। यूथप—यूथपति, सरदार। रण—युद्ध।

"हे रावण, मैंने ऐसा अपने कानों से सुना है कि बन्दरों के सरदारों की संख्या १८ पद्म है। हे स्वामी, उस सेना में ऐसा कोई बंदर नहीं है जो युद्ध में तुम्हें न जीत सके।"

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥

मीजहिं—मसलते हैं। आयसु—आज्ञा। पै—परन्तु। झष—मछली, मच्छ। ब्याला—सर्प। पूरहिं—भर दें, पाट दें। त—तो। कु—पृथ्वी। कुधर—पृथ्वी को धारण करने वाले अर्थात पर्वत।

"वे सब अत्यन्त क्रोध से हाथ मसलते हैं, (कि लंका को तुरन्त जाकर जीत लें) परन्तु रामचंद्र जी आज्ञा नहीं देते। (वे बन्दर) मच्छ और सर्पों सहित समुद्र को सोख सकते हैं, नहीं तो फिर बड़े बड़े पर्वतों से ही उसे पाट दे सकते हैं।"

मर्दि गर्दि मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहु ग्रसन चहति हहिं लंका॥

मर्दि—मर्दन करके, मसल मसल कर। गर्दि—गरदना देकर, कुचल कर, अथवा गर्द में, धूल में। तर्जहिं—डाटते हैं, ललकारते हैं। सहज—स्वभाव से। अशंक—निडर। ग्रसन—निकलना। हहिं—है।

"मसल कर रावण को धूल में मिला देंगे, ऐसेही शब्द तमाम बंदर कहते हैं। वे गर्जन करते हैं, डाटते-ललकारते हैं और स्वभाव से ही निडर हैं मानों लंका को निगल जाना चाहते हों।"

सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ, जीति सकहिं संग्राम॥

काल—मृत्यु, यमराज।

"तमाम बन्दर और रीछ स्वाभाविक रूप से ही शूर-वीर हैं, फिर उनके सिर पर (अर्थात् उनके संरक्षक और हौसला बढ़ाने वाले) रामचन्द्र जी हैं। हे रावण, वे युद्ध में करोड़ यमराजों को भी जीत सकते हैं।"

राम-तेज-बल-बुधि विपुलाई। सेष सहससत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहिं पूछेउ नयनागर॥

बुधि—बुद्धि। विपुलाई—विपुलता, अधिकता। सेष—शेषनाग। नयनागर—नीति में चतुर।

"रामचन्द्र जी के तेज, बल और बुद्धि की अधिकता का सौ हज़ार शेष भी नहीं वर्णन कर सकते। उनका एक बाण सौ समुद्रों को सुखा देने में समर्थ है (परन्तु) वह नीति में चतुर हैं। (इस लिए) उन्होंने तुम्हारे भाई से पूछा कि क्या करना चाहिये।"

तासु वचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत वचन बिहँसा दससीसा। जौं अस मति सहायकृत कीसा॥
सहज भीरु कर वचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपुबलबुद्धि थाह मैं पाई॥

तासु—उसके। पाहीं—पास, से। पंथ—मार्ग। जौं—यदि। मति—बुद्धि। सहायकृत—सहायता करने वाले। भीरु—डरपोक दृढ़ाई—दृढ़ता, मजबूती, भरोसा। मचलाइ—झगड़ा, अथवा मचल मचल कर बच्चों की तरह खुशामद करना। मृषा—व्यर्थ, झूठ-मूठें। थाह—गहराई, असलियत।

"उसकी (तुम्हारे भ्राता की) बात सुन कर रामचन्द्र जी मन में कृपा करके सागर से पार होने के लिए रास्ता माँगने लगे।" (दूत की बात) सुनकर रावण हँसा (और बोला), "जो उन तपस्वियों की ऐसी ही बुद्धि है और उनके सहायक

बन्दर हैं, जो उन्होंने (उस विभीषण) के वचनों में विश्वास करके समुद्र के साथ यह झगड़ा ठाना है (तो मैं समझ गया कि ये लोग स्वभाव से ही डरपोक हैं और झूठ मूठ अपने वचन में दृढ़ता करते हैं, अर्थात् केवल बातों के शेर हैं परन्तु दिल में डरते हैं क्योंकि भला जब ये समुद्र से इस प्रकार मचल मचल कर बच्चों की भाँति जिद ठानते हैं।) तो मैंने अपने शत्रु की बल-बुद्धि की थाह पाली। तू, मूर्ख, उनकी क्या बेकार प्रशंसा करता है ?—

सचिव सभीत बिभीषनु जाके। बिजय-बिभूति कहाँ लगि ताके॥
सुनि खल बचन दूत रिसि बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥

सचिव—मंत्री, सलाह देने वाले। विभूति—ऐश्वर्य, बड़ाई कहाँ लगि—कहाँ तक। रिसि—रोष, क्रोध। पत्रिका—चिट्ठी। काढ़ी—निकाली। समय—अवसर, मौका।

"विभीषण जैसे डरपोक जिसके सलाह देने वाले हों, उसकी विजय और समृद्धि कहाँ तक हो सकती है ?" दुष्ट रावण के वचन सुनकर दूत को क्रोध बढ़ आया और अवसर समझकर उसने (लछमण जी वाली) चिट्ठी निकाली (और कहा)—

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहँसि बामकर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥

पाती—पत्री, चिट्ठी। बँचाइ—बँचवा कर, पढ़वा कर। जुड़ावहु—ठंढी करो। बामकर—बाँया हाथ (कर्मधारय। शत्रु की चिट्ठी बाएँ हाथ में ली जाती है)। बोलि—बुलाकर। लाग बँचावन—पढ़वाने लगा।

"रामचन्द्र जी के छोटे भाई ने यह चिट्ठी दी है। हे स्वामी, इसे पढ़वाकर अपनी छाती ठंडी कर लो।" रावण ने हँसकर

उस चिट्ठी को बाएँ हाथ में ले लिया और मंत्री को बुला कर उसे पढ़वाने लगा।

> बातन मनहि रिझाइ सठ, जनि घालेसि कुल खीस।
> रामविरोध न उबरसि, सरन बिष्णु अज ईस॥
>
> की तज मान अनुज इव, प्रभु-पद-पंकज-भृंग।
> होहि कि रामसरानल, खल कुल-सहित पतंग॥

बातन—बातों से। रिझाइ—प्रसन्न करके। घालेसि—नष्ट कर। रामविरोध—रामचन्द्र जी के विरोध (वैर) से (तत्पु०) उबरसि—उद्धार। अज—ब्रह्मा। ईश—महादेव। की—अथवा तज—छोड़। मान—अभिमान। इव—तरह, भाँति। प्रभु-पद-पङ्कज-भृङ्ग—भगवान् (रामचन्द्र जी) के चरण रूपी कमल (रूपक) का भौंरा (रूपक। तत्पु०)। होहि—हो। कि—अथवा। रामसरानल—रामचन्द्र जी के शर (बाण) रूपी अग्नि (रूपक तत्पु०)। पतङ्ग—पतिङ्गा, जो दीपक के चारों ओर मँडरा कर उसी में जल जाता है।

(लक्ष्मण जी की चिट्ठी में लिखा था)—"अरे, दुष्ट बातों से ही मन को रिझाकर तू अपने कुल को नष्ट मत कर। रामचन्द्र जी से वैर करके विष्णु, ब्रह्मा और शिव जी की शरण में जाने से भी रक्षा नहीं हो सकती। या तो तू, अपने भाई की तरह भगवान् रामचन्द्र जी के चरण कमलों का भौंरा बन कर अभिमान छोड़ दे, या फिर रामचन्द्र जी की शराग्नि मे अपने कुलसहित पतिङ्गा बन (और अपने को जला डाल)।

> सुनत सभय मन मुख मुसकाई। कहत दसानन सबहिं सुनाई॥
> भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥

कर—हाथ से। गहत—पकड़ता है। अकासा—आकाश। लघु—क्षुद्र, तुच्छ। कर—का। बागविलासा—वाग्विलास, वाचालता, बढ़ बढ़ कर बात बनाना।

(चिट्ठी) सुन कर रावण मन में डरा (परंतु) मुख से मुस्कराया और सब को सुना कर कहने लगा, "तुच्छ तपस्वी का बड़बोलापन (तो देखो)! पृथ्वी पर पड़ा पड़ा हाथ से आकाश को पकड़ना चाहता है। (अर्थात् तुच्छ का बढ़ बढ़ कर बातें करना ऐसा ही है जैसे भूमि पर पड़े पड़े आकाश को पकड़ने की चेष्टा करना जो एक असम्भव कार्य है)।"

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाँड़ि प्रकृत अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ रामसन तजहु बिरोधा॥

प्रकृत—स्वाभाविक। मम—मेरा। परिहरि—छोड़ कर।

शुक बोला, "हे नाथ, (जो कुछ इस पत्र में लिखा है उस) सब बात को, अपना स्वाभाविक अभिमान छोड़ कर सत्य समझो। स्वामी, मेरी बात सुनो, और क्रोध त्याग कर रामचन्द्र जी के साथ शत्रुता को छोड़ दो।—

अति कोमल रघुबीर-सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम पर प्रभु करहीं। उर अपराध न एकउ धरहीं॥
जनक सुता रघुनाथहिं दीजै। एतना कहा मोर प्रभु कीजै॥

अखिल—सब, तमाम। राऊ—राजा।

"यद्यपि रामचन्द्र जी तमाम विश्व के स्वामी हैं तथापि उनका स्वभाव बड़ा कोमल है। जैसे ही तुम उनसे मिलोगे वह तुम पर कृपा करेंगे और तुम्हारे एक भी अपराध को अपने हृदय में नहीं रहने देंगे। हे स्वामी, मेरा इतना कहना मानो कि श्री सीता जी को रामचन्द्र जी को लौटा दो।"

जबै तेहि कहा देन बैदेही। चरनप्रहार कीन्ह सठ तेही ॥
नाइ चरन सिर चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ ॥

देन—देने के लिए। चरण प्रहार—चरण का आघात (तत्पु०)।

जिस समय उस दूत ने सीता जी को लौटाने को कहा तो दुष्ट रावण ने उसको लात मारी तब वह दूत (शुक) उसके चरणों में सिर झुका कर वहाँ गया जहाँ कृपासागर श्रीरामचन्द्र जी थे।

करि प्रनामु निज कथा सुनाई। रामकृपा आपन गति पाई ॥
रिषि अगस्ति कें साप भवानी। राच्छस भयउ रहा मुनि ज्ञानी ॥
बंदि रामपद बारहिं बारा। मुनि निज आस्रम कहुँ पगु धारा ॥

आपन—अपनी। गति—अवस्था। रिषि—ऋषि। साप—शाप। राच्छस—राक्षस। मुनि—शुक। आस्रम—आश्रम। कहुँ—को। पगु—चरण।

उसने रामचन्द्र जी को प्रणाम कर अपना हाल सुनाया (जो रावण की सभा में हुआ था) और उनकी कृपा से अपनी (पहली) अवस्था को प्राप्त कर लिया। (शिव जी कहते हैं कि) "हे पार्वती जी, (यह शुक पहले एक) ज्ञानी मुनि था (परन्तु) अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था।" उस मुनि ने वार वार रामचन्द्र जी के चरणों में वंदना कर अपने आश्रम की तरफ़ पैर किया (अर्थात् अपने आश्रम को गया)।

बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥

विनय—प्रार्थना। जड़—अचेतन, मूर्ख। सकोप—क्रोध से (अव्ययी०)

(उधर रामचन्द्र जी को समुद्र से प्रार्थना करते करते) तीन दिन बीत गए परन्तु जड़ समुद्र प्रार्थना को मानता ही नहीं

था। (उसने पार होने के लिए मार्ग नहीं दिया)। तब रामचन्द्र जी क्रोध में आकर बोले कि, "बिना भय के प्रेम नहीं होता।" (अर्थात् समुद्र से सीधी तरह इतनी प्रार्थना की तो उसने नहीं सुना, क्योंकि उसे कोई डर नहीं था; यदि डर होता तो अवश्य मार्ग देता)।

लछिमन बान सरासन आनू। सोखउँ बारिधि बिसिखकृसानू॥

सरासन—धनुष। आनू—लाओ। बारिधि—समुद्र। बिसिख—विशिख, बाण। कृसानू—कृशानु, अग्नि। बान-कृसानू- बाणरूपी अग्नि, अथवा बाण की अग्नि।

"(इसलिए) हे लछमण धनुष बाण ले आओ। समुद्र को बाण की अग्नि से सुखा डालूँ (क्योंकि)—"

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुन्दर नीती॥
ममतारत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा॥

कुटिल—टेढ़ा, कपटी। सहज—स्वाभाविक। कृपिन—कृपण कंजूस। ममतारत—मोह में फँसा हुआ। बिरति—वैराग्य। सम—शम, शांति। बये—बोने पर। जथा—यथा, जैसे।

"दुष्ट के साथ नम्रता का व्यवहार करना, धूर्त के साथ प्रेम, स्वभाव से ही जो कंजूस है उसके साथ सुंदर नीति की बातें करना, संसार के मायामोह में फँसे हुए मनुष्य के साथ ज्ञान की कथाएँ कहना, परम लोभी को वैराग्य का व्याख्यान दे—
क्रोधी के साथ शांति तथा कामी (विषयालम्प
की चर्चा करना—(ये सब बातें ऐसी ही निरर्थ
भूमि में बीज बोने पर फल (की आशा करना)

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला॥
मकर-उरग-झष-गन अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनिगन नाना। विप्ररूप आयउ तजि माना॥

चाप—धनुष। संधानेउ—निशाना सँभाला, धनुष पर बाण चढ़ाया। कराल—भयंकर। उर अंतर—हृदय में, भीतर। गन—गण, समूह। जलनिधि—समुद्र। कनकथार—सोने का थाल(तत्पु०)। मनिगन—मणियों का समूह। माना—मान, अभिमान।

ऐसा कह कर रामचंद्र जी ने धनुष चढ़ाया। उनकी यह सलाह (समुद्र को सोखने की) लक्ष्मण जी के मन को अच्छी लगी। भगवान् ने एक भयंकर बाण धनुष के ऊपर रक्खा (जिससे) समुद्र के भीतर अग्नि की ज्वाला उठने लगी (और उस ज्वाला से) मगर, सर्प, मच्छ आदि (जल के जंतु) व्याकुल होने लगे। जब समुद्र को मालूम हुआ कि जंतु जल रहे हैं तो वह अभिमान छोड़ कर तथा सोने के थाल में तरह तरह की मणियाँ भर कर ब्राह्मण का रूप धारण कर के आया।

काटेहि पइ कदली फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच॥

काटेहि पइ—काटने पर ही। कदली—केले का वृक्ष। फरइ—फलता है। जतन—यत्न, उपाय। खगेस—पक्षियों के सरदार, गरुड़। नव—नमता है, झुकता है, नम्र हो जाता है।

(काकभुशुण्ड जी गरुड़ जी से कहते हैं कि) "हे खगेश, सुनो। केले का वृक्ष काटे जाने पर ही फलता है, यदि कोई करोड़ उपायों

से उसे सींचे (तो बेकार है। इसी प्रकार) नीच व्यक्ति नम्रता से नहीं मानता, डाटने पर ही वह झुकता है।"

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥

केरे—के। छमहु—क्षमा कीजिए। अवगुन—दोष, अपराध। गगन—आकाश, समीर—वायु। अनल—अग्नि। धरणी—पृथ्वी। इन्ह कइ—इनकी। जड—मूर्खतापूर्ण। करनी—काम

समुद्र ने भयभीत होकर रामचन्द्र जी के चरण पकड़ लिए और कहा, "हे नाथ मेरे सब अपराधों को क्षमा कीजिए।" आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, इन सब का काम स्वाभाविक रूप से ही मूर्खतापूर्वक होता है (क्योंकि ये सब पदार्थ जड़ हैं। अतएव मेरी मूर्खता भी स्वभाववश ही है और क्षम्य है)

तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रन्थहि गाये॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई॥

सृष्टिहेतु—सृष्टि के लिए। ग्रन्थहि—ग्रन्थों ने। आयसु—आज्ञा। जेहि कहँ—जिसको। जस—जैसी। अहई—होती है। लहई—प्राप्त करता है।

"(इन सब पदार्थों को) आपकीप्रेरणा से माया ने सृष्टि के कार्य के लिए उत्पन्न किया है, यह बात सब ग्रन्थ (वेद, पुराण आदि) ने गायी है। आप की जिसके लिए जैसी आज्ञा होती है वह उसी भाँति रह कर सुख पाता है।"

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुन तुम्हरिय कीन्ही॥
ढोल गँवार सूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥

भल—अच्छा । सिख—शिक्षा, नसीहत । मरजादा—मर्यादा । ताड़न—मारना, पीटना । अधिकारी—योग्य । कीन्हीं—बनाई हुई ।

"प्रभु (आप) ने अच्छा ही किया जो मुझे शिक्षा दे दी । और फिर मर्यादा भी तो आप ही की बनाई हुई है । ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्रियाँ, ये सब पीटने के ही योग्य हैं (अर्थात् ये पीटे जाने पर ही मानते हैं) ।

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटकु न मोर बड़ाई ॥
प्रभु-आज्ञा अपेल स्रुति गाई । करहु सो बेगि जो तुम्हहि सुहाई ॥

जाब सुखाई—सूख जाऊँगा । अपेल—अटल, जो पेली या हटाई न जा सके । स्रुति—श्रुति, वेद । बेगि—जल्दी से । बड़ाई—महिमा ।

"प्रभु (आप) के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा (जिससे) आप की सेना पार उतर जाएगी । (ऐसा करने में) मेरी महिमा या प्रशंसा की कोई बात नहीं है (क्योंकि यह आप ही का प्रताप है) । आप की आज्ञा अटल है, ऐसा वेदों ने कहा है । (अब) जो आप को पसन्द हो सो शीघ्र कर लीजिए ।"

सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपालु मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरइ कपिकटकु, तात सो कहहु उपाय ॥

(समुद्र के) अति विनम्र वचन सुनकर कृपा सागर रामचन्द्र जी ने मुस्करा कर कहा, "हे तात, जिस प्रकार बानरों की सेना पार उतर सके सो उपाय बताओ ।"

नाथ नील नल कपि दोउ भाई । लरिकाईं रिसि आसिष पाई ॥
तिन्ह के परस किये गिरि भारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥

लरिकाई—लड़कपन में। आसिष—आशिष, आशीर्वाद। परस—स्पर्श, छूना। गिरि—पहाड़।

(समुद्र ने उत्तर दिया), "हे नाथ, (आप की सेना में) नील और नल नामक दो बंदर भाई हैं। उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था कि उनके छूने से भारी भारी पहाड़ आपके प्रताप से समुद्र में तैरने लगेंगे।"

मैं पुनि उर धरि प्रभु-प्रभुताई। करिहउँ बल-अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय। जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइय॥

प्रभु-प्रभुताई—प्रभु की महिमा (तत्पु०)। करिहउँ—करूँगा। बल-अनुमान—बल के अनुमान से, सामर्थ्य के अनुसार। सहाई—सहायता। पयोधि—समुद्र। बँधाइय—पुल बँधवा दीजिये। जेहि—जिससे। गाइय—गाया जाय।

"मैं भी आप की महिमा अपने हृदय में धारण कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार (सेना के पार उतरने में) सहायता करूँगा। इस प्रकार, हे स्वामी, समुद्र का पुल बँधवा दीजिए जिससे यह सुयश तीनों लोकों में गाया जाय।"

एहि सर मम उत्तर-तट-बासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी॥
सुनि कृपालु सागर-मन-पीरा। तुरतहिं हरी राम रन धीरा॥

उत्तरतट—उत्तरी किनारा। (कर्म०) उत्तरतट बासी—उत्तरी किनारे पर रहने वाले (तत्पु०)। हतहु—मारो। अघ—पाप। अघरासी—अघराशि, पाप के खजाना (तत्पु०) सागर-मन-पीरा—समुद्र के मन की पीड़ा (तत्पु०)। रनधीर—युद्ध में धीर अर्थात् स्थिर रहने वाले, युद्ध में न घबड़ाने वाले।

"इस बाण से (जो आपने मुझे सुखाने के लिए चढ़ाया था) मेरे उत्तरी किनारे पर रहने वाले अति पापी दुष्ट मनुष्यों को

मार दीजिए।" यह सुन कर कृपालु रणधीर रामचन्द्र जी ने (उन उत्तर तट वासी दुष्टों को मार कर) समुद्र के मन के दुःख को तुरन्त दूर कर दिया।

देखि रामबल-पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥

पौरुष—पुरुषार्थ, पराक्रम। पयोनिधि, पाथोधि—समुद्र। सुखारी—सुखी। चरित—हाल, इतिहास। सिधावा—गया।

रामचन्द्र जी के भारी बल और पराक्रम को देख कर समुद्र को हर्ष हुआ और वह सुखी हुआ। उसने अपना तमाम हाल प्रभु रामचन्द्र जी को कह सुनाया और फिर उनके चरणों की वंदना कर चला गया।

निज भवन गवनेउ सिंधु, श्री रघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलिमल-हर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय-समन दमन विषाद रघुपति-गुन-गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

गवनेउ—गया। भायऊ—पसन्द आया। कलिमलहर—कलियुग के दोषों (तत्पु०) को हरने वाले (तत्पु०)। यथामति—बुद्धि के अनुसार। सुखभवन—सुख का स्थान (तत्पु०) संशय-शमन—सदेहों को शान्त करने वाला (तत्पु०)। दमन-विषाद—शोक और दुख को दूर करने वाला (तत्पु०)। रघुपति गुनगना—रघुपतिगुणगण, रघुनाथ जी के गुणों का समूह। आस—आशा। भरोसा—विश्वास। संतत—हमेशा। मना—मन।

समुद्र अपने घर चला गया और रामचन्द्र जी को उसकी यह सलाह पसन्द आई। रघुनाथ जी का यह चरित्र कलियुग में पैदा होने वाले दोषों को हरने वाला है और इसे (रघुनाथ

जी के) दास तुलसीदास जी ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है। रघुनाथ जी के गुणों के समूह (का कीर्तन) सुख का स्थान है, संदेह को शान्त करने वाला है तथा शोक को दूर करने वाला है। (तुलसीदास जी अपने मन से कहते हैं कि) "अरे दुष्ट मन, तमाम आशाओं और भरोसों को छोड़ कर तू हमेशा (भगवान् के उसी चरित्र और गुण समूह को) गा और सुन।"

सकल सुमङ्गलदायक, रघुनायक गुनगान।
सादर सुनहिं ते तरहिं, भव-सिंधु बिना जलजान॥

सुमगलदायक—सुन्दर कल्याण का देने वाला (तत्पु०)। रघुनायकगुनगान—रघु (कुल) के नायक के गुणों का गान (तत्पु०)। सादर—आदरपूर्वक (अव्ययी०)। भव—संसार। भवसिंधु—संसाररूपी समुद्र (रूपक)। जलजान—जलयान, नौका, जहाज।

श्री रामचन्द्र जी के गुणों का गान सब प्रकार के कल्याण का देने वाला है। जो लोग इसे आदर के साथ सुनते हैं वे नाव के बिना ही संसार-सागर को पार कर जाते हैं।

इतिश्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
ज्ञानसम्पादनो नाम
पञ्चमः सोपानः समाप्तः॥